वीतराग-विज्ञान

[छहढाला-प्रवचन भाग

पं. श्री दौलतरामजी रचित

छहढालाके प्रथम अध्याय पर

पूज्य श्री कानजीस्वामीके प्रवचन

लेखक सम्पादक

ब्र० हरिलाल जैन

सोनगढ

चतुर्थावृत्ति २०००] [वीर संवत् २५०७

अर्पण

वीतराग-विज्ञान जिन्हे अति प्रिय है
एवं मोक्षमार्गसाधक सन्तोंके सान्निध्यमे
जो उत्साहके साथ वीतराग-विज्ञान
के लिये उद्यमशील है ऐसे मेरे
साधर्मिओंके सुहस्तमे गुरुप्रसाद
रूप यह वीतराग-विज्ञान
अर्पण करते हुए मुझे हर्ष
हो रहा है

—हरि

प्रस्तावना

पंडित श्री दौलतरामजी रचित यह छहढालाकी हिन्दी-गुजराती-मराठी भाषाओंमे भिन्न-भिन्न प्रकाशकोंके द्वारा करीव २० आवृत्तिया छप चुकी है, और जेन समाजमे सर्वत्र इसका प्रचार है। सोनगढ-संस्थाके स्व० माननीय प्रमुख श्री नवनीतलाल सी. झवेरी की भी यह एक प्रिय पुस्तक थी और उनको यह कंठस्थ भी थी। पूज्य श्री कानजी स्वामीके अध्यात्मरसपूर्ण प्रवचनोंका लाभ लेते हुए एकबार उनको ऐसी भावना हुई थी कि यदि इस छहढाला पर पू. स्वामीजीके प्रवचन हों और वह छपकर प्रकाशित हो तो समाजमे वहुतसे जिज्ञासु इसके सच्चे भावोंको समझें और इसके स्वाध्यायका यथार्थ लाभ ले सकें। ऐसी भावनासे प्रेरित होकर आपने पूज्य स्वामीजीसे छहढाला पर प्रवचन करनेकी प्रार्थना की, उसके फल-स्वरूप छहढालाके यह प्रवचन आज हमारे जिज्ञासु साधर्मिओंके हस्तमे आ रहे हैं। इस प्रवचनके द्वारा पू. स्वामीजीने छहढालाका महत्त्व वढ़ाया है और इसके भावोंको खोलकर जिज्ञासु जीवों पर उपकार किया है। छहढालाके छहों अध्यायके प्रवचनोका अंदाज एक हजार पृष्ट होनेकी संभावना है जो कि अलग-अलग छह पुस्तकोंमे प्रकाशित होगा। इनमेसे प्रथम अध्यायकी यह पुस्तक आपके सन्मुख है और दूसरी तैयार हो रही है।

संसारके जीवोंको दु:खसे छूटनेका व सुखकी प्राप्तिका पथ दिखानेवाली यह 'छहढाला' जैनसमाजमे बहुत प्रचलित है। अनेक जगह पाठशालाओंमे यह पढ़ाई जाती है, एवं बहुतसे स्वाध्याय प्रेमी जिज्ञासु इसे कण्ठस्थ भी करते है। इस पुस्तकके प्रारम्भमे, वीतराग-विज्ञानके अभावमे जीवने संसारकी चार गतियोंमे किस किस प्रकार दुःख भोगे यह दिखाया है और इस दु:खके कारणरूप मिथ्यात्वादिका स्वरूप समझाकर उसको छोड़नेका उपदेश दिया है; इसके बाद उस मिथ्यात्वादिको छोड़नेके लिये मोक्षके कारणरूप सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्रका स्वरूप समझाकर उसको आराधनाका उपदेश दिया है।—ऐसे, इस छोटीसी पुस्तकमे जीवोंको हितकारी प्रयोजनभूत उपदेशका सुगम संकलन है और उसमे भी सम्यक्त्व प्राप्तिके लिये खास प्रेरणा देते हुए कहा है कि—

मोक्षमहलकी परथम सीढी, या बिन ज्ञान-चरित्ता।
सम्यक्ता न लहे, सो दर्शन धारो भव्य पवित्रा ॥

सम्यग्दर्शनके बिना ज्ञान या चारित्र सच्चा नहीं होता, सम्यग्दर्शन ही, मुक्तिमहलकी प्रथम सीढी है। अत. हे भव्य जीवों! यह नरभव पाकरके काल गमाये बिना तुम अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक सम्यक्त्वको धारण करो।

इस पुस्तकके रचयिता पं० श्री दौलतरामजी एक कवि थे। किसी कविमे मात्र काव्यशक्तिका होना ही पर्याप्त नहीं है परन्तु उस काव्यशक्तिका उपयोग जो ऐसी पदरचनामे करे कि जिससे जीवोंका हित हो—वही उत्तम कवि है। संसारके प्राणी विषय–

कषायके शृङ्गार-रसमें तो फँसे ही हुए हैं और ऐसे ही शृङ्गार-रस पोषक काव्य रचनेवाले 'कुकवि' भी बहुत हैं, परन्तु शृङ्गार-रससेसे विरक्त कराके वैराग्यरसको पुष्ट करे ऐसे हितकर अध्यात्मपदके रचनेवाले 'सुकवि' संसारमें विरल ही होते हैं। ऐसी उत्तम रचनाओंके द्वारा अनेक जैन कवियोंने जैन शासनको विभूषित किया है। श्री जिनसेनाचार्य समन्तभद्राचार्य, अमृतचन्द्राचार्य, मानतुंग-स्वामी, कुमुदचन्दजी इत्यादि अपने प्राचीन संत-कवियोंने आत्मरस-भरपूर जो काव्यरचनायें की हैं उनकी तुलना, आध्यात्मिक दृष्टिसे तो दूर रही परन्तु साहित्यक दृष्टिसे भी शायद ही कोई कर सके। हिन्दी साहित्यमें भी पं० बनारसीदासजी, भागचन्दजी, दौलतरामजी, द्यानतरायजी इत्यादि अनेक विद्वानोंने अपनी पदरचनाओंमें अध्यात्म-रसकी मधुर धारा बहाई,— इनमेंसे एक यह छहढाला है—जो सुगमशैलीसे वीतराग-विज्ञानका बोध देती है।

इस छहढालाके रचयिता पं० श्री दौलतरामजीका समय विक्रम सम्वत १८५५ से १९२३-२४ तकका है। उनका जन्म हाथरसमें हुआ था। वह बहुत शास्त्र-स्वाध्याय करते थे। बादमें लश्कर-ग्वालियरमें रहे। रत्नकरण्डश्रावकाचार आदिके हिन्दी टीकाकार पं० सदासुखजी (जयपुर), बुधजनविलास तथा छहढाला (दूसरी)के कर्ता पं० बुधजनजी, पं० वृन्दावनजी (काशी), ईसागढ़में पं० भागचन्दजी, दिल्लीमें पं० बखतावरमलजी तथा पं० तनसुख-दासजी आदि विद्वान भी उनके समकालीन थे। उनका स्वर्गवास विक्रम सं० १९२३ या २४ में मंगसर कृष्णा अमावस्याके दोपहरमें

दिल्लीमे हुआ था। उन्हें छह दिन पहले स्वर्गवासका आभास हो गया था, और गोम्मटसार शास्त्रका जो स्वाध्याय वे कर रहे थे वह ठीक स्वर्गवासके ही दिन उन्होंने पूर्ण किया था। इस छहढालके उपरात उन्होंने सवासौके करीब अध्यात्म-भजन ('हम तो कवहुं न निजघर आये,' और 'जीया! तुम चलो अपने देश' इत्यादि) रचे हैं, जिसका सग्रह 'दौलतविलास' पुस्तकरूपसे प्रसिद्ध हुआ है।)

यह छहढाला पं० दौलतरामजीने १८९१की अक्षयतृतीयाके दिन पूर्ण की है दूसरी छहढाला जो कि पं० बुधजनजी कृत है, वह भी उन्होंने १८५९की अक्षयतृतीयाको पूर्ण की है, अत इसके पूर्व ३२ वर्ष पहले ही वह रची गई है। दोनों छहढालाका समाप्ति दिन एक ही है और दोनोंके छह प्रकरणोंमे वहुतसा साम्य है—जो कि कार्तिकेयस्वामीकी द्वादशानुप्रेक्षा वगैरह प्राचीन शास्त्रोंके अनुसार लिखा गया है। पं० दौलतरामजी अन्तमे स्पष्ट कहते हैं कि—यह छहढाला मैंने पं० बुधजनरचित छहढालाके आधारसे लिखी है—'कर्यो तत्त्व उपदेश यह, लखि बुधजनकी भाख।' इस प्रकार ये दोनों छहढाला बड़ी-छोटी बहिनोंके समान हैं और इस छहढालाकी तरह पं० बुधजनरचित छहढालाकी भी विशेष प्रसिद्धि हो यह आवश्यक है।

पूज्य स्वामीजीके इन प्रवचनामेसे दोहन करके २०० प्रश्नोत्तरोंका संकलन इस पुस्तकके अन्तभागमे दिया है,—वह भी तत्त्व-जिज्ञासुओंको रुचिकर होगा और उन प्रश्नोत्तरोंके द्वारा सारी पुस्तकका

सार समझनेमे सुगमता रहेगी। समस्त भारतके व विदेशके भी तत्त्वजिज्ञासु लोग ऐसे वीतरागी-साहित्यका अधिकसे अधिक लाभ लेकर वीतराग-विज्ञान प्राप्त करे. ऐसी जिनेन्द्रदेवके चरणोंमें भावना करता हूँ।

चैत्र शुक्ला त्रयोदशी,
वीर सं० २४९५
सोनगढ

ब्र० हरिलाल जैन

प्रमुखश्रीका निवेदन

मुझे बहुत हर्ष है कि पंडितवर्य श्री दौलतरामजी रचित छहढाला पर पू० श्री कानजीस्वामीने जो प्रवचन किये उनमेसे पहली ढालके प्रवचन इस 'वीतराग-विज्ञान' पुस्तकमे दूसरी आवृत्तिमे प्रकाशित हो रहे हैं।

इस छहढालाके प्रवचनोंके द्वारा जैनसिद्धान्तके रहस्योंको समझाकर पू० गुरुदेवने जैनसमाज पर उपकार किया है। गुरुदेवके प्रवचनोंका यह भावपूर्ण संकलन कर देनेके लिये भाईश्री ब्र० हरिलाल जैनको भी धन्यवाद है।

इस छहढालारूपी गागरमें सिद्धान्तरूपी सागर भरा है। सनातन सत्य दिगम्बर जैनधर्मके सिद्धान्त अतीव सुन्दर ढंगसे काव्यरचनाके द्वारा विद्वान कविश्रीने इस पुस्तकमे भर देनेकी कोशिश की है और उनकी यह रचना सफल हुई है। जैन समाजमे यह छहढाला बहुत ही प्रसिद्ध है और इसके गहरे भावोंको इस प्रवचनमें सुगम रीतिसे खोला गया है। अत जैनसमाजके जिज्ञासुओंको एव वस्तुस्वभाव समझनेमे जिसको रस हो ऐसी प्रत्येक व्यक्तिको यह अत्यन्त उपयोगी होगा और इसकी समझसे भव-भ्रमणके दु खका अन्त आकर मोक्षसुखकी प्राप्ति होगी।

जैन जयतु शासनम्।

वीर सं० २५०३ — श्री दि० जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
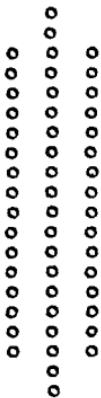
आसोज — सोनगढ (सौराष्ट्र)

* विषय सूची *
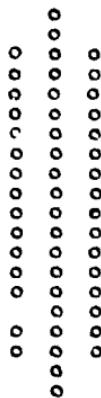
वीतराग-विज्ञान

[१]

पं० श्री दौलतरामजी रचित छहढालाके

प्रथम अध्याय पर

पू० श्री कानजीस्वामीके प्रवचन

— लेखक —

ब्र० हरिलाल जैन

मंगलमय वीतरागविज्ञानी पंच परमेष्ठी भगवन्तोंको नमस्कार

मंगलमय मंगलकरण वीतरागविज्ञान ।
नमूं ताहि जातैं भये अरहंतादि महान ॥

ॐ

मंगलाचरणमें वीतराग-विज्ञानको नमस्कार

—०—

इस पुस्तकका नाम है छहढाला, इसमे चौपाई, पद्धरी, जोगीरासा, रोला छन्द, चाल व हरिगीत—ऐसे छह प्रकारके ढालमें छह प्रकरण हैं, अथवा मिथ्यात्वादि शत्रुओंसे आत्माकी रक्षा करनेके उपायका इसमे वर्णन है अत मिथ्यात्वादिसे रक्षा करनेके लिये यह शास्त्र ढाल समान है। पं० श्री दौलतरामजीने पूर्वाचार्यों द्वारा रचित शास्त्रोंमेंसे निचोड करके इसमे गागरमे सागरको तरह भर दिया है। इसके मगलाचरणमे वीतराग-विज्ञानको नमस्कार करते हुए कहते हैं कि—

(सोरठा)

तीन भुवनमें सार, वीतराग-विज्ञानता।
शिवस्वरूप शिवकार, नमहूं त्रियोग सम्हारिकैं॥

सौराष्ट्रका 'सोरठा' विख्यात है। शास्त्रकार इस मंगल श्लोकमे अरिहंत भगवानके वीतराग-विज्ञानको नमस्कार करते हुए कहते हैं कि वीतराग-विज्ञानरूप केवलज्ञान ही तीन भुवनमे सार है—उत्तम है, वह शिवस्वरूप अर्थात् आनन्दस्वरूप है और वही शिवकार अर्थात् मोक्षका करनेवाला है। ऐसे सारभूत वीतराग-विज्ञानको मैं तीनों योगकी सावधानीसे नमस्कार करता हूँ।

देखो, मांगलिकरूप से वीतराग-विज्ञान को याद किया है। चतुर्थ गुणस्थान में धर्मी को भेदज्ञान हुआ वहां से वीतराग-विज्ञान का अंश प्रारम्भ हो गया है और केवलज्ञान होने पर पूर्ण वीतराग-विज्ञान प्रगट हो गया है। ऐसा वीतराग-विज्ञान ही मोक्ष का कारण है, वही जगत में उत्तम व मंगल है। राग के प्रति सावधानी छोड़के और ऐसे वीतराग-विज्ञान के प्रति सावधान हो करके, उसका आदर करके उसे नमस्कार करते हैं।

वीतराग-विज्ञान को नमस्कार किया उसमें अनन्त अरिहन्त भगवन्तों को नमस्कार आ जाता है, क्योंकि सभी अरिहन्त भगवन्तों वीतराग-विज्ञानस्वरूप है। भले किसी एक अरिहन्त का (सीमन्धर महावीर आदि का) नाम न लिया हो किन्तु 'वीतराग-विज्ञान' कहने में सभी अरिहन्त आ गये। सभी पंच परमेष्ठी भगवन्त भी वीतराग-विज्ञानरूप हैं, अतः वीतराग-विज्ञान को नमस्कार करने में सभी पंच परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार हो गया। गुण-अपेक्षा से किसी एक अरिहन्त को नमस्कार करने पर सभी अरिहन्तों को नमस्कार हो जाता है।

पं० श्री टोडरमलजी ने भी मोक्षमार्गप्रकाशक के मंगलाचरण में वीतराग-विज्ञान को ही नमस्कार किया है—

मंगलमय मंगलकरन वीतरागविज्ञान।
नमौं ताहि जातैं भये अरहन्तादि महान॥

मंगलमय एवं मंगलका करनेवाला ऐसा जो वीतराग विज्ञान उसे मैं नमस्कार करता हूँ- कि जिसके कारणसे अरिहन्तादिकी

महानता है। अरिहन्तादिकी पूजनीयता वीतराग-विज्ञानसे ही है। अरिहन्तादिका स्वरूप वीतराग-विज्ञानमय है और इस गुणके कारणसे ही वे स्तुतियोग्य महान हुए हैं। वैसे तो सभी जीवतत्त्व समान हैं, किन्तु रागादि विकारसे व ज्ञानादिककी हीनतासे जीव निन्दा योग्य होता है, और रागादिकी हीनता व ज्ञानादिकी विशेपतासे जीव स्तुतियोग्य होता है। अरिहन्त व सिद्ध भगवन्तोंको तो रागादिका सर्वथा अभाव और ज्ञानकी पूर्णता होनेसे वे सम्पूर्ण वीतराग-विज्ञानमय हुए हैं, और आचार्य-उपाध्याय साधुको एकदेश वीतरागता तथा ज्ञानकी विशेपता होनेसे उन्हें एकदेश वीतराग-विज्ञानता है।—इस प्रकार पाचो परमेष्ठीभगवन्त वीतराग-विज्ञानमय होनेसे पूज्य हैं ऐसा जानना।

वीतराग-विज्ञान तीन भुवनमे साररूप है। अधोलोक, मध्य-लोक या ऊर्ध्वलोक अर्थात् नरकमे, मनुष्यलोकमे व देवलोकमे, तीनों भुवनमे जीवोंको वीतराग-विज्ञान ही साररूप—हितरूप है, वही सर्वत्र उत्तम है, वही प्रयोजनरूप है, जैसे 'समयसार' अर्थात् सर्व पदार्थोमे साररूप ऐसा शुद्धात्मा, उसे समयसारके मंगलमे नमस्कार किया है वैसे यहां तीन भुवनमे सार ऐसे वीतराग-विज्ञानको मंगलरूपसे नमस्कार किया है। अहो, वीतराग-विज्ञान ही जगतमे सार है,—वही उत्तम है, इसके सिवाय शुभ-राग या पुण्य वह कोई साररूप नहीं है, वह उत्तम नहीं है, राग-द्वेप रहित ऐसा केवलज्ञान ही उत्तम व साररूप है। धर्मात्मा केवलज्ञान चाहते हैं अत उसे याद करके वंदन करते हैं और उसकी भावना भाते हैं।

श्रीमद् राजचन्द्रजी भी अन्तिम काव्यमे सर्वज्ञपदको याद करते हुए कहते है कि—

"इच्छे छे जे जोगीजन अनन्त सौख्यस्वरूप,
मूल शुद्ध ते आत्मपद सयोगी जिनस्वरूप।"

सयोगी जिन कहो या वीतराग-विज्ञानस्वरूप अरिहन्तदेव कहो, वह शुद्ध आत्मपद है और योगीजन ज्ञानी धर्मात्मा उसे चाहते है। 'सुखधाम अनन्त सुसंत चही, दिनरात रहें तद् ध्यान महीं।' अनन्त सुखस्वरूप ऐसी केवलज्ञानपर्याय, वह आत्माका निजपद है, वह आत्माका शुद्ध स्वभाव है, सन्त उसे ही चाहते है। वीतरागविज्ञानको जो वन्दन करे वह रागको सारभूत कैसे माने? कदापि न माने।

ऊर्ध्वलोकमे सिद्धालयसे लेकर सौधर्म स्वर्ग तक, मध्यलोकमे असख्यात द्वीप-समुद्रोंमे और अधोलोकमे नीचे, ऐसे तीनों लोकमे आत्माके लिये सारभूत एक वीतरागी विज्ञान ही है। 'वीतराग' कहनेसे सम्यक्चारित्र आया और 'विज्ञान' कहनेसे सम्यग्ज्ञान व सम्यग्दर्शन आया, इस प्रकार वीतराग-विज्ञानमे सम्यग्दर्शन–ज्ञान –चारित्र तीनों समा जाते हैं। ऐसा वीतराग-विज्ञान शिवस्वरूप है, आनन्दस्वरूप है, मंगलस्वरूप है। पूर्ण ज्ञान व पूर्ण आनन्दस्वरूप ऐसा केवलज्ञान महान सारभूत है, साधकके जो आंशिक वीतराग-विज्ञान है वह भी आनन्दरूप है और वह पूर्णानन्दरूप मोक्षका कारण है। देखो, प्रारम्भसे ही वीतरागविज्ञानको मोक्षका कारण कहा, किन्तु शुभ रागको मोक्षका कारण नहीं कहा। इस प्रकार मोक्षके

कारणरूप ऐसे वीतराग-विज्ञानको ही साररूप मानके उसे मैं नमस्कार करता हूँ, सावधानीसे अर्थात् उस तरफके उद्यमपूर्वक नमस्कार करता हूँ। रागसे भिन्न होना और शुद्धस्वभावके सन्मुख होना,— यह निश्चय सावधानी है, ऐसी निश्चय सावधानीसे अर्थात् निर्मोह भावसे मैं सर्वज्ञको नमस्कार करता हूँ, और बाह्यमे शुभरागके निमित्तरूप मन-वचन-कायरूप त्रियोगकी सावधानी है।

आत्माके भान व अनुभवपूर्वक छद्मस्थको भी वीतराग विज्ञान होता है, चतुर्थ गुणस्थानसे प्रारम्भ होकर जितना सम्यग्ज्ञान है वह रागरहित ही है—ज्ञानमे राग नहीं। आत्माका जो स्वसंवेदन है वह वीतराग ही होता है, रागवाला नहीं होता, यह बात परमात्म-प्रकाशमे 'वीतराग स्वसवेदन' ऐसा कहकर समझायी है। साधक-भूमिकामे राग हो भले किन्तु उसका जो स्वसवेदन ज्ञान है वह तो वीतराग ही है। यहा मुख्यरूपसे पूर्ण वीतराग ऐसे केवलज्ञानकी बात है। अहो, जगतमे जो कोई जीव अपना हित करना चाहता हो उसे पूर्ण केवलज्ञान पद ही नमस्कार करने योग्य है, वही आदर करने योग्य है, उसे ही हितरूप समझकर प्रगट करने योग्य है, सर्वज्ञ पदकी अचिंत्य अपार महिमा जानकर मेरा अन्तर उस वीतराग-विज्ञानकी ओर ढलता है—नमता है,—ऐसी परिणतिका नाम साधकदशा है।

देखो, इस मांगलिकमे भगवानके गुणोंको पहचानके नमस्कार होता है। समन्तभद्रस्वामी कहते हैं कि 'वन्दे तद्गुणलब्धये' अर्थात् भगवान जैसे अपने गुणोंकी प्राप्तिके लिये मैं उन्हें वन्दन करता हूं।

जो वीतराग विज्ञानरूप केवलज्ञान है वह पर्याय है और वह प्रगट होनेकी आत्मामे ताकत है। रागसे रहित एक समयमे तीनकाल तीनलोकको जाने —ऐसा जिसका सामर्थ्य है वह पर्याय आत्मामेंसे ही प्रगट होती है। ऐसे आत्माको श्रद्धासे लेकर, पहचानपूर्वक वीतराग-विज्ञानको जिसने नमस्कार किया उसको अपनी पर्यायमे भी वीतराग-विज्ञानका अंश प्रगट हुआ वह अपूर्व मंगल है, वह साररूप है।

'सार' अर्थात् मक्खन, जैसे दहीका मथन करके उसमेसे मक्खन निकालते है वैसे तीनलोकका मथन करके सन्तोंने उसमेसे कौनसा सार निकाला?–तो कहते हैं कि 'तीन भुवनमे सार वीतराग-विज्ञानता।' जगतमे वीतराग-विज्ञान ही सारभूत है, इसके अतिरक्त रागसे धर्म मानना वह तो निःसार, जलके मथन करने जैसा है, उसमेसे कुछ सार निकलनेवाला नहीं। ज्ञानीयोंने जगतके सभी तत्त्वोंको जानके उनका मथन करने पर उनमेसे शुद्ध चैतन्यके केवलज्ञानरूपी मक्खन निकाला, उसे ही साररूप समझके अंगीकार किया। अन्तरमें ध्यानके द्वारा चैतन्यका मथन करके मुनिवरोंने वीतराग-विज्ञानरूप सार प्राप्त किया, अन्य बाह्यदृष्टिवन्त जीव तो पुण्यरूपी पानी मे ही फंस गये–वे शुभराग मे ही सन्तुष्ट हो गये, परन्तु रागसे पार वीतराग-विज्ञान को उन्होंने नहीं पहचाना। वीतराग-विज्ञानको साररूप समझकर उनका बहुमान करना यह मंगल है।

आत्मा में से राग-द्वेष टल गये व ज्ञान की पूर्णदशा प्रगट हुई,

तब वहा क्षुधा-तृषा-रोगादि १८ दोषरहित व वीतरागता सहित परम आनंदमय केवलज्ञान हुआ, ऐसा केवलज्ञान अपने में प्रगट करने के लिये उसकी प्रतीत करके वन्दन व आदर करते हैं, अपने आत्मा मे उसे बुलाते है। इस प्रकार सर्वज्ञदेव की श्रद्धा व बहुमान के साथ शास्त्र का प्रारम्भ होता है।

"ते गुरु मेरे मन वसो"

श्रीगुरु जीवोंको सुखकर उपदेश देते हैं

जगतके जीव दुःखसे भयभीत हैं और सुखको चाहते हैं; अतः श्रीगुरुओंने करुणा करके ऐसा उपदेश दिया है कि जिसके द्वारा दुःख मिटे व सुख प्रगटे। श्रीगुरुने शास्त्रमे जो हितोपदेश दिया है उसीके अनुसार इस छहढाला मे कथन करेंगे—

गाथा १ (चौपाई छन्द)

जे त्रिभुवन में जीव अनन्त, सुख चाहैं दुःखतैं भयवन्त ।
तातैं दुःखहारी सुखकार, कहैं सीख गुरु करुणाधार ॥ १ ॥

तीनलोकमे वीतराग-विज्ञान सार है—यह दिखाकर अब उस वीतराग-विज्ञान प्रगट करने का उपदेश देते हैं। तीनलोक मे अनन्त जीव हैं वे सब सुखको चाहते हैं और दुःखसे डरते हैं, अतः उनको कैसे सुख होवे व कैसे दुःख मिटे,—ऐसा मोक्षमार्गका हितकारी उपदेश करुणावन्त श्रीगुरु देते हैं। मोक्षमार्ग कहो, रत्नत्रय कहो या वीतराग-विज्ञान कहो,—इसके ही द्वारा जीवोंको सुख होता है व दुःख मिटता है, इसलिये ज्ञानी-गुरुओंने करुणा करके जीवोंको उसकी सीख दी है, उसका उपदेश दिया है। ऐसा उपदेश समझकर सच्चा उपाय करनेसे दुःखका नाश होकर सुखका अनुभव होता है।

अरे, अज्ञानभावसे जीव चार गतिके दुःखोंमे बिलख रहा है। ज्ञानी भी पूर्वकी अज्ञानदशामे ऐसे दुःख भोग चुके हैं एवं आत्माका सच्चा सुख भी उन्होंने चख लिया है, अतः उन्हें जगतके जीवोंके

ऊपर प्रशस्त करुणा आती है कि अरे ! अज्ञानके इन घोर दुःखोंसे जीव कैसे छूटें और सच्चा आत्मसुख कैसे पावें ? ऐसी करुणासे दुःखका कारण जो मिथ्यात्व उसे छोड़नेका और सुखके कारण ऐसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रको अगीकार करनेका उपदेश दिया है। यदि तू अपना कल्याण चाहता हो तो हे जीव ! इस उपदेशको स्थिर मनसे सुन,—ऐसा दूसरी गाथामे कहेंगे।

देखो तो सही, सन्तोंको कितनी करुणा है ! प्रवचनसारमे भी कहते हैं कि "परम आनन्दरूपी सुधारसके पिपासु भव्य जीवोंके हितके लिये...यह टीका की जाती है।" अतीन्द्रिय आनन्दरसकी जिसे तरस लगी है ऐसे जीवको उस अतीन्द्रिय आनन्दरसका ऐसा स्वरूप समझाते हैं कि जिसको समझते ही अपूर्व आनन्द सहित सम्यग्दर्शन हो।

परमात्म-प्रकाशकी उत्थानिकामें भी प्रभाकर-शिष्य श्रीगुरुसे विनती करता है कि हे स्वामिन् ! इस ससारमे भ्रमण करते करते मेरा अनन्त काल बीत चुका किन्तु मैंने जरासा भी सुख न पाया, महान दुःख ही पाया। उत्तम कुल आदि सामग्री अनन्तबार मिली तो भी किंचित् सुख न पाया, स्वर्गमे भी मुझे सुख न मिला, वीतरागी परमानन्द सुखका स्वाद मैंने कभी न चखा। इस प्रकार अपने भाव निर्मल करके शिष्य प्रार्थना करता है कि हे गुरु ! इन चार गतियोंके दुःखोंसे सतप्त ऐसे मुझे आप प्रसन्न होकर ऐसा कोई परमात्म-तत्त्व बताओ कि जिसके जाननेसे चार गतिके दुःखका नाश हो और आनन्द प्रगट हो।

तब श्रीगुरु कहते हैं कि आत्माका ऐसा स्वरूप मैं तुझे कहता हूं उसे तू सुन! 'णिसुणि तुहूं' इसप्रकार जो जीव अन्तरमे तीव्र जिज्ञासु होकर आया उसके लिये यह हितका उपदेश है।

चार गतिमे सब मिलके अनन्त जीव हैं। मनुष्य गतिमे असंख्यात हैं, नरकमे असंख्यात हैं, देवलोक मे असंख्यात हैं और तिर्यंच मे अनन्त है, तिर्यंच मे दोइन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के जीव तो असंख्यात ही है किन्तु एकेन्द्रिय जीव अनन्त हैं। ये सब जीव मिथ्यात्वके कारण महा दुःखी हैं। वे सब जीव दुःखसे तो भयभीत है और सुखको ही चाहते हैं, परन्तु कहां है वह सुख व कैसे प्रगटे वह?—इसका उपाय वे नहीं जानते। क्यों दुःख है? और कैसे टले वह? इसकी उनको खबर नहीं। इसलिये सुखके हेतु वे बाहर लौट रहे हैं, किन्तु बाहरके उपायसे उनका दुःख मिटता नहीं और उन्हें सुख होता नहीं। अतः उन जीवोंके ऊपर करुणा करके दुःखसे छूटनेका उपाय सन्तोंने दिखलाया है। हे जीव! तेरा मिथ्यात्वभाव ही तुझे दुःख देनेवाला है, अतः तू तेरी ही भूलसे दुःखी है, सच्चे भेदज्ञानके द्वारा उस भूलको मिटा दे और सम्यक्त्वादि प्रगट कर,—यही सुखी होनेका उपाय है। 'रे जीव! तेरे दोषसे तुझे बन्धन है यह सन्तकी पहली शिक्षा है। तेरा दोष इतना कि परको अपना मानना और अपने आपको भूल जाना।'—(श्रीमद् राजचन्द्र) हे जीव! ऐसे मिथ्यात्वके कारण चारगतिके अनन्त दुःख तूने भोगे, अब परम सुखरूप मोक्षकी प्राप्तिके लिये तू सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रको अंगीकार कर।

अरे, सुखके लिये जगतके जीव कितने आकुल-व्याकुल हो रहे हैं? वे कल्पना करते हैं कि रुपयोंमेंसे सुख ले लूं। अच्छे शरीरमेंसे या महलमेंसे सुख ले लूं। ऐसे बाह्यमें सुखकी खोज करते हैं। यहां तक कि घरबार छोडकर, शरीरको भी छोड़कर (आपघात करके भी) सुखी होना व दुःखसे छूटना चाहते हैं। अतः यहां कहा कि—

जे त्रिभुवनमें जीव अनन्त, सुख चाहैं दुःखतैं भयवन्त।

कौन ऐसा है जो सुखको न चाहे? सुखकी जिसे इच्छा न हो वह या तो सिद्ध-वीतराग या नास्तिक या जड। एकेन्द्रियादि जीवोंको यद्यपि मन या विचारशक्ति नहीं है, किन्तु अव्यक्तरूपसे वे भी सुखको ही चाहते हैं। इसप्रकार जगतके अनन्त जीवोंके सुखकी ही चाहना है, और दुःखका त्रास है। सुखको चाहते हुए भी यह नहीं जानते कि सच्चे सुखका क्या स्वरूप है और कैसे उपायसे वह प्रगटे? अतः यहां श्रीगुरु इसका उपदेश देते हैं। गुरु कहनेसे रत्नत्रयगुणके धारक दिगम्बर सन्त आचार्य यहां मुख्य हैं। ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूपी गुणोंमें जो अधिक हैं, बड़े हैं, ऐसे गुरुओंने वीतराग-विज्ञानरूप मोक्षमार्गका उपदेश देकर जगतके जीवोंके ऊपर महान उपकार किया है। उनको ऐसा शुभराग था और जगतके जीवोंका ऐसा सद्भाग्य था, इससे कुन्दकुन्दादि गुरुओंने जगतको मोक्षमार्गका उपदेश दिया है। कुन्दकुन्दस्वामी स्वयं कहते हैं कि मेरे गुरुओंने मेरे ऊपर अनुग्रह करके मुझे शुद्धात्माका उपदेश दिया है, उसीके अनुसार मैं इस समयसारमें

शुद्धात्मा दर्शाता हूँ, इसे हे भव्य जीवों! तुम अपने स्वानुभवसे जानो।

श्रीमद् राजचन्द्रजी भी 'आत्मसिद्धि'मे कहते है कि अरे, अज्ञानी जीव बाह्यक्रियाको एवं बाहरी शुष्क ज्ञानपनेको धर्म या मोक्षमार्ग मान रहे है, उन्हें देखकर ज्ञानीको करुणा आती है, अत: उन्होंने जगतको सच्चा मोक्षमार्ग समझाया है। दु:ख क्यों है?—कि अपने आत्माका स्वरूप न समझनेसे जीवने अनन्त दु:ख पाया। अब वह स्वरूप श्रीगुरु तुझे समझाते है, इसको समझनेसे तेरा परम कल्याण होगा और तेरा दु:ख मिटेगा।

वाह! वीतरागमार्गी सन्तोंने स्वयं मोक्षमार्ग साधते हुए जगतको भी हितका उपदेश देकर मोक्षमार्ग दिखाया है। अरे प्राणीयों! तुम अपने हितके लिये आत्माका स्वरूप समझो! पं० दौलतरामजी कहते है कि—इस प्रकार श्रीगुरुओंने आत्माका भला होनेके लिये जो हितोपदेश दिया वही मैं इस छहढालामे कहता हूँ। भले यह शास्त्र छोटा है किन्तु इसमे भी, जो उपदेश बड़े बडे मुनियोंने दिया है उसीके अनुसार मैं कहूँगा, उनसे विपरीत कुछ नहीं कहूँगा।

जो जीव आत्माका गरजवान होकर आया है, अपने हितके लिये धर्मका जिज्ञासु होकर आया है ऐसे जीवके लिये यह बात है। जिसको अपने हितके लिये कुछ दरकार ही न हो—ऐसे जीवके लिये तो क्या कहना? पं. टोडरमलजी मोक्षमार्ग-प्रकाशकमे कहते हैं कि जो धर्मका लोभी हो, धर्मका वांछक हो, धर्म समझनेका गरजवान हो ऐसे जीवको आचार्य धर्मोपदेश देते हैं। आचार्य

परमेष्ठी मुख्यरूपसे तो निर्विकल्प स्वरूपाचरणमे ही निमग्न हैं परन्तु कदाचित धर्मलोभी आदि अन्य जीवों को देखकर रागके उदयसे करुणाबुद्धि होने पर उनको धर्मोपदेश देते हैं। अहा, उन सन्तोंका मुख्य काम तो निज स्वरूपमे लीन होकर परमानन्द साधनेका है, परन्तु क्वचित विकल्पका उत्थान होने पर धर्मोपदेश देते हैं।

अरे, ऐसे उपदेशदाता गुरुका योग मिलने पर भी जो यह उपदेश न सुने उसे तो आत्माकी दरकार ही नहीं, संसारके दु खसे अब भी वह थकित नहीं हुआ। यहा तो ऐसे जिज्ञासु जीवके लिये यह बात है—जो संसारभ्रमणसे थककर आत्माकी शाति लेना चाहता हो।

देहसे भिन्न आत्माको जाननेवाले व रागसे भिन्न आनन्दका अनुभव करनेवाले ऐसे वीतरागी मुनि, जो रत्नत्रयके धारक हैं व मोक्षके साधक हैं, तीन कषायचतुष्कका जिनके अभाव है, प्रचुर वीतरागी स्वसवेदन जिनको वर्त रहा है, ऐसे गुरु करुणा करके ८४ लक्ष योनिके दु खी जीवोंके लिये हितकी शिक्षा (हितका उपदेश) देते हैं। कैसा उपदेश देते है?—दुःखका नाश करनेवाला और सुखकी प्राप्ति करानेवाला। (तातैं दु खहारी सुखकार, कहै सीख गुरु करुणाधार)

देखो, इसमे दु खका अर्थात् विकारका व्यय और आनन्दकी उत्पत्ति—ऐसे उत्पाद-व्यय आ गये और दु खसे छूटकर वही आत्मा सुखपर्यायमें नित्य रहता है—ऐसी ध्रुवता भी आ गई। उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप सत्‌वस्तुके विना दु खसे छूटनेका व सुखी

होनेका वन नहीं सकना। अहो, वीतरागमार्ग अलौकिक है। साधक सन्तोंका स्वसवेदनरूप वीतराग-विज्ञान अपूर्ण होने पर भा वह केवलज्ञानकी जातिका है, अधूरा होने पर भी रागसे रहित है। ऐसे वीतरागी सन्तोंने जगतको वीतराग-विज्ञानकी ही सीख दी है। केवलज्ञानके साधनेवाले सन्तोंने जो वीतराग-विज्ञानरूप मोक्षमार्गका उपदेश दिया है वही इस छहढालामे सक्षेपसे कहा है। अतएव यह शास्त्र छोटा होने पर भी प्रमाणभूत है। इसमे अतीव सुगम शैलीसे ऐसा तत्त्व समझाया है कि घर घरमे बच्चोंको भी यह पढाने योग्य है।

इस शास्त्रमे एवं सभी वीतरागी शास्त्रोंमे आत्माको सुख देने-वाला व दुःखसे छुडानेवाला उपदेश दिया है। जिसके द्वारा विकारका—दुःखका नाश हो व सुखकी प्राप्ति हो यही सन्तोंका उपदेश व सन्तोंको शिक्षा है। विकार यह दुःख है इसके नाशका अर्थात् निर्विकारीदशा प्रगट करनेका उपदेश है। रागको छोडनेका व वीतरागभाव प्रगट करनेका उपदेश है,—ऐसा उपदेश यही इष्टोपदेश है। इष्ट-उपदेश अर्थात हितका उपदेश, प्रिय उपदेश। इस उपदेशकी समझका फल यह है कि भेदविज्ञान होकर दुःखका नाश हो और सुखका अनुभव प्रगट हो—यही तो जीवको इष्ट है, यही प्रयोजन है और यही सार है। इसका यह अर्थ हुआ कि प्रथम मंगलाचरणमे जिस वीतराग-विज्ञानको नमस्कार किया यही वीतराग-विज्ञान प्रगट करनेका उपदेश जैनधर्मके चारों अनुयोगमे दिया है, चारों ही अनुयोग वीतराग-विज्ञानके पोषक हैं और उसीका

उपदेश इस पुस्तकमें भी करेंगे। इसे हे भव्य जीवों! तुम प्रीति-पूर्वक सुनो!—किस हेतुसे? कि अपने हितके लिये।

संसारमें भ्रमण करते करते अनन्त कालमें दुर्लभ ऐसा सञ्ज्ञीपन जिसे प्राप्त हुआ है और उसमें भी आत्महितका उपदेश सुनके समझ सके इतनी विचारशक्ति प्रगट हुई है, इसप्रकारकी ज्ञानकी ताकात व समझनेकी जिज्ञासा है ऐसे जीवके लिये श्रीगुरु करुणापूर्वक यह उपदेश सुनाते हैं। अहा, सन्तोंने मोक्षका मार्ग समझाकर जगतके ऊपर उपकार किया है।

दुःखका नाश, सुखकी प्राप्ति—बस! इसमें मोक्षमार्ग आ गया। दुःखका कारण मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र इसका तो जिनवाणी नाश कराती है और सुखका कारण सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट कराती है। जिस भावसे दुःखका नाश न हो व सुखका अनुभव न हो उस भावको भगवान धर्म नहीं कहते, उसको मोक्षमार्ग नहीं कहते, और ऐसे भावका सेवन करनेका जिसमें कहा हो वह उपदेश सच्चा नहीं, हितकर नहीं। सन्तोंने तो जिससे जीवका भला हो—हित हो ऐसे वीतराग-विज्ञानकी ही शिक्षा दी है, उसे ही धर्म कहा है।

तीनलोकमें किसी जीवको दुःख प्रिय नहीं लगता, दुःखसे सभी डरते हैं। क्या निगोदके जीव भी दुःखसे डरते हैं?—हां, अव्यक्तरूपसे वे भी दुःखसे छूटना ही चाहते हैं। प्रत्येक जीवका ऐसा ही स्वभाव है कि सुख ही उसका स्वरूप है। और दुःख

उसका स्वरूप नहीं है। क्वचित् अपमानादिके दुःख होने पर देहका त्याग करके भी उस दुःखसे छूटकर सुखी होना चाहता है, शरीररहित अकेला रहकर भी दुःखसे छूटना चाहता है, अतः शरीररहित अकेला आत्मा सुखी रह सकता है, इससे सिद्ध होता है कि आत्मा स्वयं सुखस्वरूप है। 'अरे, ऐसे दुःखसे तो मर जाना अच्छा'—इस प्रकार मरणसे भी दुःख असह्य लगते हैं, दुःखसे छूटनेके लिये जीव मृत्युको भी कुछ नहीं गिनता, इस प्रकार जीवको दुःख प्रिय न होनेसे देहको छोड़के भी दुःखसे छूटना चाहते हैं। अतएव अव्यक्तरूपसे भी यह सिद्ध होता है कि आत्मामे देहके विना सुख है। यदि देहातीत अपने आत्माको अन्तरमें देखे तो अवश्य अतीन्द्रिय सुखका अनुभव हो। परन्तु अज्ञानी अपने आत्माका सच्चा भान नहीं करता अतः उसे अपना सुख स्वानुभवमे नहीं आता।

अपमानादिके होने पर भीतरसे तीव्र दुःख लगे, समाधान कर न सके, परीक्षामे अनुत्तीर्ण होने पर, धन्धेमें बड़ा नुकसान होने पर या देहकी तीव्र पीडा सहन न होने पर,—ऐसे प्रसंगमे कोई जीव विचार करता है कि अरेरे! अब तो जहर खाकर या पानीमे डूबकर इस दुःखसे छूटूं! देखो तो सही जहर खाना तो सुगम लगता है किन्तु दुःख सहन करना कठिन लगता है। भाई! देह छोड़ करके भी सचमुचमे यदि तू सुखी होना चाहता है और दुःखसे तुझे छूटना है तो उसका सच्चा रास्ता ले। देहसे भिन्न ज्ञानस्वरूप आत्मा क्या चीज है इसकी पहचान करके वीतराग-

विज्ञान प्रगट करना यही सच्चा उपाय है। यहां वह उपाय सन्त तुझे दिखाते हैं, उसे तू सावधान होकर सुन।

आत्मभ्रांतिके समान दूसरा कोई रोग नहीं, और आत्मज्ञ गुरुके समान दूसरा कोई वैद्य नहीं। अरे भाई, देहके रोगकी पीडासे छूटना चाहता है, किन्तु आत्म-भ्रांतिके रोगका जो महान दुःख है इससे छूटनेका उपाय कर। इसके लिये वीतराग-विज्ञानके उपदेशक सद्गुरुको सच्चा वैद्य समझ। ऐसे गुरु दुःखसे छूटनेका व सुख प्रगट करनेका जो उपदेश देते हैं उसे सुननेकी प्रेरणा अब दूसरी गाथामें करते हैं।

तेरे कल्याणके लिये भावश्रवण कर और तेरी भूल छोड़

श्रीगुरु हितका उपदेश देते हैं यह बात पहली गाथामे दिखाई, अब दूसरी गाथामे शिष्यको अनुरोध करते हैं कि हे भव्य! तेरे आत्मकल्याणके लिये सावधान होकर स्थिरचित्तसे तू इस उपदेशका श्रवण कर।

अहो, वीतरागमार्गी दिगम्बर संत-मुनि वगैरह गुरुओंने जीवके हितके लिये वीतराग विज्ञानका उपदेश दिया है, उसे हे भव्य जीवों! तुम प्रेमसे सुनो—

(गाथा-२)

ताहि सुनो भवि मन थिर आन, जो चाहो अपनो कल्याण।
मोह महामद पियो अनादि, भूल आपको भरमत वादि॥ २॥

यदि तुम अपना हित चाहते हो तो हे भव्य जीवों! श्रीगुरुके इस हितोपदेशको मन स्थिर करके सुनो। 'हे भव्य जीवो! हे मोक्षके लायक जीवो! हे अपने हितके चाहने वाले जीवों!'—ऐसा उत्तम सम्बोधन करके अनुरोध करते हैं कि वीतरागविज्ञानका यह उपदेश तुम ध्यानपूर्वक सुनो दुःखसे छूटनेके लिये और मोक्षसुख पानेके लिये यह उपदेश उपयोग लगाकर तुम सुनो। इससे अवश्य तुम्हारा हित होगा। अन्य विषयोंसे लक्ष हटाकर अपने हितकी यह बात प्रेमसे-उत्साहसे सुनो।

श्री गुणधर आचार्यदेवने 'कषायप्राभृत'की १० वीं गाथामे 'सुण' ऐसा शब्द रखा है, उसका अर्थ करते हुए 'जयधवला' टीकामे श्री वीरसेन स्वामी लिखते हैं कि "शिष्यको सावधान करनेके लिये गाथा सूत्रमे जो 'सुनो' यह पद कहा है वह 'नासमझ शिष्यको व्याख्यान करना निरर्थक है' यह बतलानेके लिये कहा है।" (पृ. १७१) जिनको समझनेकी दरकार ही नहीं ऐसे जीवोंके लिये उपदेश नहीं दिया जाता, परन्तु जो समझनेको तमन्नावाले हैं ऐसे शिष्योंको कहते हैं कि तुम सुनो। जैसे कि—जब जल मंगाना हो तब उसके लिये घरके गाय-भैंस आदि पशुको नहीं कहा जाता कि तुम जल लाओ, क्योंकि उनमे ऐसी शक्ति नहीं है। किन्तु समझदार आठ वर्षके बालकको जल लानेका कहनेसे वह समझ लेता है, वैसे यहा आत्माका स्वरूप समझनेकी जिनमे ताकात है, जिनको ऐसी जिज्ञासा हुई है ऐसे जीवोंके लिये सन्तों उसकी बात सुनाते हैं एवं कहते हैं कि हे भव्य! 'सुण' अर्थात् जो भाव हम कहते हैं उसे तू लक्ष्मे ले। तब ही सच्चा श्रवण कहलाता है जब कि भावोंको समझे।

यहां भी कहते हैं कि 'सुनो भवि मन थिर आन' तुम्हारे हितकी बात सुनो! हे भाई! दुःखसे छूटनेकी एवं सुख पानेकी ऐसी तेरे हितकी यह बात हम तुझे सुनाते हैं इसको तेरे हितके लिये सावधान हो करके तूं सुन। दूसरी बात व दूसरा विकल्प छोडके वीतरागविज्ञानकी यह बात लक्षपूर्वक सुन। संसारका रस छोड़के इस चैतन्यके वीतरागविज्ञानमे तत्पर हो!

देखो तो सही, सुननेवाले श्रोताओंके प्रति कितना अनुग्रह किया है! अनुरोध करते है कि अरे जीवों! यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो, सुख या मोक्ष चाहते हो, तो उसके लिये हमारे पास यह वीतरागविज्ञानका उपदेश है, इसे तुम ध्यानपूर्वक सुनो! इसके अतिरिक्त संसारमे धन वगैरह कैसे मिले या रोगादिक कैसे मिटे उसका उपदेश हमारे पास नहीं है, राग तो दुःख है, उसका पोषक उपदेश हमारे पास नहीं है, हमारे पास तो सुखका पोषक ऐसा वीतरागविज्ञानका ही उपदेश है। इसको जिसे चाहना हो वे सुनो।

मात्र 'सुनो' ऐसा नहीं अपितु स्थिरचित्त होकर सुनो, और हितके अभिलाषी हो करके सुनो कि अहो! यह मेरे हितकी कोई अपूर्व बात है। बैठे हो श्रवण करनेको और मन तो जहा-तहा भ्रमता हो—ऐसे जीवको श्रवणका लाभ कैसे होगा? समयसारमें कहा है कि दूसरा निष्प्रयोजन कोलाहल छोड़के सब विकल्पको छोड़के एक अपने चैतन्यस्वरूपके अनुभवका ही अतरमे अभ्यास करे तो शीघ्र ही आत्मानुभव होगा।—कितने समयमे होगा? तो कहते है कि अधिकसे अधिक छहमासमे होगा, किसीको इससे भी अल्पकालमे हो सकता है।

अब यह दिखाते हैं कि संसारमे अभीतक जीवने क्या किया?, और वह दुःखी क्यों हुआ?—'मोह महा मद पियो अनादि भूल आपको भरमत वादि।' देखो, यहाँ दुःखका मूल कारण दिखलाकर बादमे उसको दूर करनेका उपाय कहेंगे। 'भूल आपको' अर्थात्

स्वयं अपनी आत्माको भूल करके अनादिसे जीव संसारभ्रमण कर रहा है। मिथ्यात्वरूपी महा मद पिया है अत आप अपनेको भूलके जीव संसारमे दुःखी हो रहा है। श्रीमद् राजचन्द्रजीने कहा है कि 'निज स्वरूप समझे विना पाया दु ख अनन्त।'—जीव अपनी भूलसे ही दु खी है भूल कितनी ?-कि स्वयं अपनेको ही भूल गया और परको अपना माना-इतनी। यह कोई छोटीसी भूल नहीं परन्तु सबसे बड़ी भूल है। अपनी ऐसी महान भूलके कारण बेभान होकर जीव चारो गतियामे घूम रहा है, किन्तु ऐसा नहीं कि किसी दूसरेने उसको दु खी किया या कर्मोंने उसको रुलाया। सीधी सादी यह बात है कि जीव स्वयं निजस्वरूपको भूलके अपनी ही भूलसे रुला व दुखी हुआ, जब सच्ची समझके द्वारा वह अपनी भूल मेटे तब उसका दु ख मिटे, अन्य कोई उपायसे दु.ख मिट नहीं सकता। अत. मिथ्यात्वको दूर करना व सम्यक्त्वको प्रगट करना यही सभी सन्तोंकी पहली सीख है।

अज्ञानी जीव बाहरी सामग्रीको दूर करने और बनाये रखनेके उपाय द्वारा दु ख मेटना व सुखी होना चाहते हैं, किन्तु ये सब उपाय झूठे हैं। तो सच्चा उपाय क्या है ? जब सम्यग्दर्शनादिसे भ्रम दूर हो तब बाह्य सामग्रीसे सुख-दु ख न दिखे, अपने परिणामसे ही सुख-दुख दिखे, और यथार्थ विचारके अभ्याससे अपना परिणाम जिसप्रकार इस सामग्रीके निमित्तसे सुखी-दु खी न हो ऐसा साधन करें। और सम्यग्दर्शनादिकी ही भावनासे मोह मन्द होने पर ऐसी

दशा हो जाय कि अनेक कारणोंके मिलने पर भी इस जीवको उनमें सुख-दुःखका भास न हो, इसप्रकार शांतरसरूप निराकुल होकर सच्चे सुखका अनुभव करे, तब ही सर्व दुःख मिटकर सुखी होवे। अतः यह सम्यग्दर्शनादि ही सुखी होनेका सच्चा उपाय है।

(मोक्षमार्ग प्रकाशक)

संसारमे रुलते हुए जीवने अनादिसे मिथ्यात्वरूपी तीव्र मद्यका पान किया है, जैसे मदिरा पिया हुआ मनुष्य अपना भान भूल जाय वैसे मोहरूपी मदिराके पानसे अपने आत्म-स्वरूपका भान भूल के बेभान होकर जीव चार गतिमे रुलता है। जैसे जीवका शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप अनादिसे है वैसे उनकी पर्यायमे मोहदशा भी अनादिसे चली आ रही है परन्तु वह उसका सच्चा स्वरूप न होनेसे टल सकती है। जो अपना वास्तविक शुद्धस्वरूप है उसे भूलके मिथ्यात्वरूपी तीव्र मदिराका पान किया, इस कारण जैसे उन्मत्त मनुष्य भानरहित जहां कहीं भी गंदगीमे पड़ा रहे वैसे मोहसे उन्मत्त होकर जीव चारों गतियोंमें जहां तहां रुलता है;—कभी दरिद्री तो कभी राजा, कभी देव और कभी नारकी, कभी हाथी तो कभी एकेन्द्रिय—ऐसी दशामे भ्रमण करता हुआ देहको ही अपना रूप समझकर जीव महा दुःखी हो रहा है। कितने लोग ऐसे होते है कि पूरे दिन कठिन मजदूरी करके दो-पांच रुपये प्राप्त करें और बादमे रात्रिको एक-दो रुपयेका शराब पीकर पागल होकर घूमे। घरमे बच्चोंके लिये तो खानेका भी हो या न हो किन्तु शराब वगैरहके पीछे पैसे लगाकर दुःखी होवे। वैसे संसारमें

रुलता हुआ जीव भी कठिनतासे कभी मनुष्य होता है, परन्तु वह देहबुद्धिरूपी मोह-मदिरामे मनुष्यभव गंवाकर ससारमे जहां-तहां भ्रमण करता है। जैसे कोई दयालु पुरुष उस शराबीको जगावे कि अरे भाई, उठ! तुझे यह शोभा नहीं देता, यह आदत छोड़ दे और तेरे उत्तम घरमे जाकर बस। वैसे यहां दयालु होकर श्रीगुरु मोहोन्मत्त जीवोंको दु:खसे छुडानेके लिये वीतरागविज्ञानका उपदेश देते हैं।

किसको यह उपदेश दिया जाता है? जीवको उपदेश दिया जाता है, क्योंकि जीवकी अपनी भूल है। कर्मको उपदेश नहीं देते कि हे कर्म! तू जीवको हैरान मत कर। यदि कर्म जीवको रुलावे एवं कर्म ही तारे, तब तो फिर जीवको करनेका ही क्या रहा? और जीवको उपदेश भी क्यों दिया जाय? प्रथम तो स्वयं जीवने मोहरूप भूल की है और उसे वह कर्मके ऊपर डालना चाहता है,—यह तो दूनी भूल है। जीव यदि अपनी भूल समझेगा तो सच्चे उद्यमसे उस भूलको मेटेगा। परन्तु भूल कर्मोंने कराई ऐसा समझेगा तब उसको टालनेका उपाय वह क्यों करेगा? अतः जिज्ञासुको यह बात तो प्रथम ही समझना चाहिए कि जीव अपनी ही भूलसे रुलता है और आप ही उस भूलको टालकर भगवान हो सकता है।

❀ जीव क्यों रुला? . भूलसे।
❀ भूल किसकी? . . अपनी।
❀ कौनसी भूल? अपने स्वरूपको भूला और परको अपना माना यह भूल।

❀ वह भूल कैसे टले ?

स्व-परका भेदज्ञान करनेसे ।

पाठशालामें छोटे बच्चोंको भी यह बात सिखलाना चाहिए कि—

❀ जीव अज्ञानसे हैरान होता है ।
कर्म जीवको हैरान नहीं करते ।

❀ जीव अपनी भूलसे दुःखी होता है ।
कर्म जीवको दुःखी नहीं करते ।

❀ जीवकी पहचान करना चाहिये ।
कर्मका दोष नहीं निकालना चाहिए ।

❀ जीवको पहचानना धर्म है ।
कर्मका दोष निकालना अधर्म है ।

देखो—जैनबालपोथी पाठ १६

एकेन्द्रिय जीव भी अपने ही भावकलंकरूप प्रचुर मोहके कारण निगोदके दुःखमें पड़े हैं। गोम्मटसारजीमें भी कहा है कि— 'भावकलंक सुप्रचुरा निगोदवास न मुंचंति' (जीवकाड गा. १९६) आत्मा स्वयं आनन्दमूर्ति है, किन्तु निजस्वरूपके भूलनेसे वह दुःखी है, अब उस दुःखसे छूटकर सुख कैसे हो इसका यह उपदेश है। अतः सुखी होनेके लिये हे जीव! तू अपना स्वरूप समझ। आत्माकी समझका यह उत्तम अवसर आया है।

मूढ मानव मद्यपानसे मूर्छित होकर कहीं भी गिरा हो और कुत्ता आकर उसके मुंहमे पेशाव भी कर जाय, फिर भी वह ऐसा माने कि मैं मीठा दूध पी रहा हूँ।—अरे, कैसा मोह है! वैसे मिथ्यात्वरूपी मद्यपान करके मोही जीव शरीर-स्त्री-पुत्र-लक्ष्मी आदि पर द्रव्यको अपना मानता हुआ उसमे राग करके खुशी होता है; उसको वेदन तो है रागकी आकुलताका, किन्तु मोहके कारण मानता है ऐसा कि मैं सुखका अनुभव कर रहा हूं। ऐसा मोह निरर्थक है, वृथा है, उस मोहसे जीव महा दु खी होकर चार गतिमे भ्रमण करता है। भाई! अव यह भवभ्रमण रोकनेके लिये और मोक्ष पानेके लिये श्रीगुरुका यह उपदेश ध्यान दे करके सुन।

जो मोक्षार्थी हो, जो भवभ्रमणसे थकित हो ऐसे जीवको श्रीगुरु मोक्षका उपदेश सुनाते हैं। भाई, मिथ्यात्वके कारण तूने चार गतिमे कैसा तीव्र दुःख पाया, यह जानकर मोहको अव तो छोड। अरे दु खके सागरमे तू मोहसे गोता खा रहा है, हजारों तरहके शारीरिक एवं मानसिक दु खोंका वेदन तू कर रहा है, उनसे छुटकारा कैसे हो इसकी यह वात है।

जीव अपनी भूलसे भ्रमण करता है। चारों गतिमें अपने चैतन्य-परमेश्वरको साथ ही साथ रख करके घूमता है, किन्तु अन्तरमे स्वयं मैं ही परमेश्वर स्वरूपसे विराज रहा हूँ—ऐसा वह नहीं देखता। मैं सयोगसे भिन्न ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ—ऐसा न जानकर, मैं देह और संयोग हूँ—ऐसा मानता हुआ, अनुकूल-प्रतिकूल संयोगमे ही मोहित हो रहा है। जैसे मदिरापान करनेवालेका कोई

ठिकाना नहीं कि वह कब कहाँ जाकर गिरेगा ?—विष्टामें भी जानकर गिरे और फिर उसमें सुख माने। वैसे अज्ञानी–मोही जीव का कोई ठिकाना नहीं कि कब किस भवमें रुलेगा ? चारों गतिमें जहां-तहां रुकता हुआ कभी पुण्यसे स्वर्गमें जाता है तो कभी पापसे नरकमें जाता है एवं कभी मनुष्य और कभी तिर्यंच होता है, इसप्रकार मोहसे आप अपनेको भूलकर संसारमें रुल रहा है। निगोदसे लेकर नववीं ग्रैवेयक तकके मिथ्यादृष्टि जीव मोहवश दुःखी है, सुख जिसमें नहीं उसमें भ्रमसे सुख मानकर भ्रमण कर रहा है और सुख जिसमें है उसको तो वह जानता नहीं।

ऐसे अज्ञानसे जीव कहां-कहां रुला और उसने कैसे-कैसे दुःख सहे, वह अब आगे कहेंगे।

भवभ्रमणके महान दुःखोंकी कथा

अनादि कालके अज्ञानसे ससारमे भ्रमण करते हुए जीवके दु:खोंकी कथनी तो वहुत लम्बी है अरे, उस अनन्त अपार दुःखका वर्णन कैसे हो सके? किन्तु पूर्वाचार्योंने उसका जो वर्णन किया है उसके अनुसार यहां कुछ कहा जाता है—

(गाथा–३)

तास भ्रमन की है बहु कथा पै कछु कहूँ कही मुनि यथा ।
काल अनन्त निगोदमंझार वीत्यो एकेन्द्रि तन धार ॥ ३ ॥

प्रथम तो पूर्वाचार्योंके प्रति विनय एव ग्रंथकी प्रमाणिकता दर्शाते हुए कहते हैं कि यह ग्रथ मैं अपनी कल्पनासे नहीं वनाता हूं परन्तु पूर्वाचार्य श्री कुन्दकुन्दस्वामी कार्तिकस्वामी वगैरह वडे-वडे मुनिवरोंने शास्त्रोंमें जो कहा है उसीके अनुसार मैं कुछ कहूँगा। कार्तिकस्वामीने वैराग्य-अनुप्रेक्षामे तीसरी व ग्यारहवीं अनुप्रेक्षामें जो वर्णन किया है उसी शैलीसे इसमे कथन है। जीवके परिभ्रमण की और उसके दु:खकी कथा तो अपार है, उस दु:खका वेदन तो उस जीव में ही किया और केवलीभगवानने जाना। उस अपार दु:खका वर्णन वाणीमे तो कितना आ सके? तो भी वडे-वडे मुनियोंने शास्त्रमे जो वर्णन किया है उसीके

अनुसार मैं यह छहढालामें कुछ कहूँगा, भले ही अल्प कहूँगा किन्तु यथार्थ कहूंगा, विपरीत नहीं ।

भाई, आत्माकी पहचानके बिना तू बहुत रुला, बहुत भटका और बहुत दुःख पाया। तूने इतना दुःख पाया कि वचनसे कहा न जाय। अनन्तकाल तो निगोदमे एकेन्द्रियपनमे ही बिताया। अरे, निगोदके दुःखकी तो क्या बात? एक ओर सिद्धका सुख और इसके विपरीत निगोदका दुःख,—दोनों वचनातीत हैं। सातवीं नरकसे भी अनन्तगुणे दुःख निगोदके हैं। भैया! जब दुःख इतना महान है तो तेरी भूल भी महान है, बड़ी भूलके मिटानेका बडा पुरुषार्थ कर, इसलिये यह उपदेश है।

दुःखसे छूटनेका व सुखी होनेका उपाय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही है, परन्तु वह महान दुर्लभ है, अति दुर्लभ है। अनन्तकालमे निगोदमेंसे निकलकर त्रसपर्याय पाना दुर्लभ है, त्रसमे भी संज्ञीपना दुर्लभ, कदाचित संज्ञी हो तो भी क्रूर तिर्यंच होवे या नारकी होवे, उसमे मनुष्य पर्यायका मिलना दुर्लभ, उसमे आर्यदेश और उत्तम जैनकुल मिलना दुर्लभ उसमें दीर्घ आयु, इन्द्रियादिकी पूर्णता और सच्चे देव-गुरुका संग मिलना दुर्लभ,—यह सब मिलने पर भी अन्तरसे आत्माकी रुचि और सम्यग्दर्शन प्रगट करना वह तो बहुत ही दुर्लभ एवं अपूर्व है और इसके बाद रत्नत्रयका पाना तथा उसकी अखण्ड आराधना करना वह सबसे दुर्लभ है। सभी दुर्लभोंमे भी दुर्लभ ऐसे यह रत्नत्रय धर्मको जानकर बहुत ही आदरपूर्वक उसकी आराधना करो,—ऐसा

बोधिदुर्लभभावनामे उपदेश है। यह अवसर पा करके हे जीव! रत्नत्रयकी आराधनामे आत्माको जोड।

संसारभ्रमण करता हुआ जीव बहुत काल तो निगोदमें ही रहा। निगोददशा नरकसे भी हीन है, वह जीव मन एवं चार इन्द्रियोंको तो हार बैठा है, एक मात्र स्पर्शन संवधी अतीव अल्प ज्ञानपना उसको रहा है। अनन्त ज्ञानशक्तिका धनी मोहसे मूर्छित होकर दु:खके समुद्रमें विलख रहा है। नरकादिमे बाहरकी प्रतिकूलताका दु:ख लोगोंके देखनेमें आता है परन्तु निगोदमे जीवकी ज्ञानादि शक्तियाँ अत्यन्य हीन हो गई हैं और मोहकी बहुत तीव्रता है उसका जो अकथ्य अनन्त दु:ख है वह साधारण जीवोंको कल्पनामे भी नहीं आ सकता। एक निगोदशरीरमे अनन्त जीव उपजते-मरते हैं, अनन्त जीवोंके बीच उन्हे एक ही शरीर है। निगोद जीवका जो अनन्त दु:ख है वह केवलीगम्य है। अब ऐसी दु:खदशामेंसे बाहर आकर जो मनुष्य हुआ है ऐसे जीवको चेतनेका यह उपदेश है कि हे भाई! ऐसे दु:ख अनन्तबार तू भोग चुका, अब उस दु:खसे छूटनेका उपाय करनेका यह अवसर है।

निगोदके जीव कभी वहीका वही एक शरीरमे लगातार जन्म-मरण किया करते हैं। एक शरीरमे मरकर फिर उसी शरीरमें उत्पन्न हो, फिर मरे और फिर उसीमे ऊपजे,—ऐसे एक ही शरीरमे लगातार वहुतवार जन्म-मरण करते रहते हैं, जीवके अनेक भव बदल जाय किन्तु शरीर तो वहीका वही बना रहे। इसप्रकारके भी अनेक भव जीवने किये। निजस्वरूपको भूलकर देहकी ममतासे

अनन्त शरीर धारण किये, परन्तु एक भी शरीर जीवका हो करके जीवके साथ न रहा. एवं अनन्तकालसे शरीर धारण करने पर भी आत्मा उस शरीररूप नहीं हुआ। उपयोगस्वरूप आत्मा जड कैसे हो जाय? कभी नहीं हो सकता। जीव सदैव शरीरसे भिन्न ही रहा है। आत्मा और देहकी भिन्नता समझानेके लिये वीतरागी सन्तोंका यह उपदेश है।

आलू, सकरकन्द आदिके राई जितने छोटे टुकड़ेमें अनन्त जीवोंका अस्तित्व है और उसमेसे प्रत्येक जीव सिद्ध परमात्मा जैसी शक्तिवाला है, परन्तु तत्त्वकी विराधनासे उसकी चेतनाशक्ति इतनी हीन हो गई है कि सामान्य जीवोंको तो 'यह जीव है' ऐसा स्वीकार करना भी कठिन पड़ता है। अनार्यसंस्कारके कारणसे अनेक लोग अण्डे वगैरहमे जीवका होना नहीं मानते और उसका भक्षण भी करते हैं, किन्तु अण्डेमे तो पंचेन्द्रिय जीव हैं और उसका भक्षण वह तो सीधा मासाहार ही है, उसमे पंचेन्द्रिय जीवकी हिंसाका बहुत बडा पाप है। मच्छी-अण्डे आदिकी बात तो दूर रहो, किन्तु सकरकन्द-आलू-लसून आदि कन्दमूल जो कि अनन्तकाय है वह भी अभक्ष्य है। यहा तो ऐसा कहना है कि निगोदके जीव चेतनाकी अत्यन्त हीनताके कारण बहुत दुःखी है, उसका वह अनन्त दुःख बाहरसे दिखनेमे नहीं आता। हरियाली वनस्पतियां जो कि हवाके झकोरोसे लहरा रही हों, लहराते समय भी उसके अन्दरके वनस्पतिकायिक जीव सातवीं नरकके नारकीसे भी अनन्तगुनी दुःख-वेदना भोग रहे है। जीवोंने अनन्त काल

तक ऐसा दुःख भोगा। नरकका तीव्र दुःख जो कि सुना न जाय, उससे भी निगोदका दुःख तो इतना अधिक है कि जो वचनसे कहा नहीं जाता,-जहां मात्र स्पर्शके अतिरिक्त दूसरा कुछ जानने की ज्ञानशक्ति ही नहीं रही-ऐसी अत्यन्त हीन दशा है।

अरे जीव! तेरी कथा बड़ी है। तेरे आनन्दस्वभावकी महिमा भी बड़ी और तेरे दुःखकी कथा भी बड़ी। अनन्तकालके यह दुःखसे छूटनेके लिये सन्तगुरु तुझे तेरे स्वभावकी महिमा दिखाते हैं, उसे तू ध्यानसे सुन, सावधान होकर सुन। रत्नत्रयधर्मके विना जीवने अब तक कैसे कैसे दुःख भोगे इसका विचार करके अब दुर्लभ-बोधिभावना भाना चाहिए। जिसके बिना पूर्वकालमे मैं बहुत दुःखी हुआ उस रत्नत्रयको मैं कैसे पाऊँ! इसका विचार करके उसका ही उद्यम करना चाहिये। हे बन्धु! हे वत्स! धर्मके इस उत्तम अवसरको तू मत चूकना।

रे जीव! सुन, यह तेरे दुःखकी कथा

तिर्यंचगतिके दुःखोंका वर्णन

(गाथा ४ से ८ तक)

एक श्वासमें अठदसवार जन्म्यो मर्यो भर्यो दुःखभार।
निकसी भूमि-जल-पावक भयो, पवन प्रत्येक वनस्पति थयो॥ ४॥

निगोददशाके समय जीवने एक श्वास जितने कालमें अठारह जन्म-मरण किया, और उबलते तेलमें तलाना इत्यादि बहुत दुःखोंका भार सहन किया। सिद्धदशा आत्मिक आनन्दसे भरपूर है और निगोददशा दुःखके भारसे भरी है। यहा तो जरासी प्रतिकूलता आने पर या अपमानादि होने पर एकदम त्रस्त हो जाता है, परन्तु हे भाई! क्या तू भूल गया कि पूर्वमें अनन्तकाल तूने कैसे दुःखमें बिताये? अरे, उसकी याद आते ही वैराग्य आ जाय ऐसा है।

सामान्य जीवोंको दुःखकी तीव्रता समझानेके लिये अठारह वार जन्म-मरणकी बात यहा की है, सो यह संयोगका कथन है, वास्तवमें तो अन्तरंगमें देहके साथ एकत्वबुद्धि और तीव्र मोहका ही अनंत दुःख है। ऐसे ही नरकादिके दुःखमें भी बाहरके छेदन-भेदन आदि संयोगके द्वारा वर्णन करेंगे, किन्तु उस वक्त अन्दरके मिथ्यात्व भावसे ही जीव दुःखी हैं ऐसा समझना।

जीव अपनेको भूलकर परमे मोहित हो रहा है वह समझता है कि यदि शरीर ठीक हो तो मैं सुखी और शरीरमे प्रतिकूलता होने पर अपनेको दुःखी समझता है लाख-दो लाख रुपये आने पर अपनेको बढा हुआ समझ लेता है और रुपयोंका नुकसान होने पर अपना जीवन हार जाता है,—इसप्रकार मोहसे जीव हैरान हो रहा है। यह तो पंचेन्द्रिय जीवकी बात हुई, एकेन्द्रियके दुःख तो अकथ्य अनन्त है। एकेन्द्रियको बाह्यमे मात्र शरीर है, अन्य कोई सामग्री उसके पास नहीं है और शरीरको भी एक श्वासमे अठारह बार वह छोडता है और नया धारण करता है, एक अंतर्मुहूर्तमे तो हजारों भव हो जाते है। उसके दुःखका क्या कहना ? किन्तु वह दुःख देहबुद्धिका ही है। भाई ! देह तू नहीं तू तो उपयोगस्वरूप आत्मा है। ऐसी समझ करनेसे ही देह-बुद्धिका तेरा दुःख मिटेगा।

अनन्त जीव एक ही घरमे (शरीरमे) साथ साथ रहे, आहार सभीका एक, शरीर सभीके बीच एक, एकसाथ सबका जन्म और एक साथ सबका मरण होता है,—तो क्या उनके परस्परमे कोई नाता-रिश्ता होगा ? भाईचारा होगा ?-ना, एक दूसरेसे कुछ लेना-देना नहीं। हरएक जीव भिन्न, हरएक जीवके गुण भिन्न, हरएक जीवके परिणाम भिन्न, भले शरीर सबका एक हो परन्तु जीव सबके अलग हैं, वहासे मरकर कोई जीव फिर उसीमे ऊपजे, कोई मनुष्य हो जाय। हरएक जीव स्वयं अकेला अपने अनन्त दुःखको भोगता है। नारकीके तो जीव पंचेन्द्रिय है जब कि निगोदके जीवको तो

एक ही इन्द्रिय है, उसकी दशा अत्यन्त हीन हो गई है, राग-द्वेष-मोहपरिणामकी तीव्रताके कारण वे महा दुःखी हैं। दुःख बाहरमें नहीं है। मोह ही दुःख और मोहका अभाव सो सुख। छेदन-भेदन या जन्म-मरण वह तो संयोगकी बात है। अन्दरमें देहकी तीव्र ममतासे जीव मूर्छित हो रहा है उसीका दुःख है। जैसे वस्त्रके तीव्र ममत्व वाला मनुष्य बार-बार वस्त्र बदलता रहता है वैसे निगोदके जीव एक अन्तर्मुहूर्तमें हजारों बार जन्ममरण करके शरीर बदलता रहता है उसमें उसे मोहकी तीव्रता है। मोहकी तीव्रताके बिना ऐसा प्रसंग नहीं हो सकता। जैसे अरहन्तोंके मोहका नाश हो जानेसे फिरसे देह धारण करनेका नहीं रहा। सम्यग्दृष्टिको अल्प मोह बाकी रहनेसे यदि एक-दो शरीर धारण करना पडे तो उसे उत्तम देहका ही धारण होता है, हलका भव नहीं होता। देहकी तीव्र ममतासे मूर्छित जीव निगोदमें बारबार शरीरको बदलता है, वह अपने चैतन्यभावको चूककरके देहमें ही सर्वस्व मान रहा है, देहसे भिन्न अपना कोई अस्तित्व ही उसे नहीं दिखता। निगोदमें तो 'तू जीव है' ऐसा सुननेका या विचारनेका अवकाश ही नहीं रहा, उसे न तो कान है न मन वह कुछ देख नहीं सकता और बोल भी नहीं सकता। उसके दुःखका क्या कहना? जैसे किसी रूपवान राजकुमारको पकडकर मजबूत लोहसाकलसे बाधकर, उसके नाक-मुंह आदि सभी अंगोंमें तावेका गरम रस डाला हो, आखोंमें व कानोंमें लोहेके मजबूत कीले लगा दिये हों और तीक्ष्ण ... की हो, तत्पश्चात उसको लोहेकी मजबूत कोठीमें बन्द

करके चारों तरफ अग्नि जलाकर उसमे सेका जाय, तब उसे जो दुःखवेदना हो उससे अधिक दुःख नरकमे है—फिर भी यह तो पचेन्द्रियका दुःख है, किन्तु निगोदके जीवका दुःख तो उससे भी अनन्तगुणा है, जो कि वचनसे कहनेमे नहीं आता। प्रतिकूल-संयोगके कथन द्वारा उसका कुछ वर्णन किया जाता है, किन्तु उसके भीतरका दुःख तो किस तरह समझाया जाय? जैसे सिद्धोंका सुख अतीन्द्रिय है वैसे निगोदका दुःख भी इन्द्रियोंसे पार है, वहा वाहरमे प्रतिकूल सामग्री भले ही न दीखे किन्तु अन्दरमे जीवके दुःखका पार नहीं है।

आत्मा ऐसा है कि जिसमे अन्तर्मुख होकर अनुभव करनेसे अपार आनन्द होता है, यह आनन्द इन्द्रियातीत है, जो उसका वेदन करे उसे ही उसकी खबर पडे। ऐसे सुख-सम्पन्न आत्माको भूल करके उसकी विपरीतदशारूप जो दुःख है वह भी अनन्त है। अनन्त सुखसे भरपूर आत्माकी आराधनामे अनन्त सुख है और उसकी विराधनामे दुःख भी अनन्त है। एक ओर सिद्धोंका सुख, उसके विपरीत निगोदका दुःख,—ये दोनों वचनसे कहे नहीं जाते। लोकाग्रमे सिद्ध भी एक ही स्थानमे अनन्त एक साथ रहते है और वे सब अपने-अपने सुखमे मग्न है, निगोदके जीव भी एक स्थानमे एक शरीरमे अनन्त एक साथ रहते हैं और वे सब अपने-अपने दुःखमे लीन है। अरे, उनके दुःखवेदनका क्या कहा जाय? पंचाध्यायीकार कहते हैं कि जीवोंके अनन्त दुःखोंमे जो बुद्धिगोचर दुःख है वह तो दृष्टांतके द्वारा समझाया जा सकता है

परन्तु अबुद्धिगोचर जो बहुत दुःख है वह दृष्टान्तके द्वारा समझाया नहीं जा सकता। जैसे सिद्धभगवन्तोंका अतीन्द्रिय सुख दृष्टान्त द्वारा दिखाया नहीं जा सकता वैसे निगोदका अनन्त दुःख भी दृष्टान्तके द्वारा समझाया नहीं जा सकता।

भाई! तूने अज्ञानसे निजस्वरूपको भूलकर बहुत दुःख भोगे और बहुत लम्बे कालतक वह दुःख भोगे, उसका पूरा कथन वाणीमे नहीं आ सकता अनन्त गुणोंसे भरपूर परिपूर्ण आत्माको जिसने ढक दिया और जिसको ज्ञानादिका अनन्तवा भाग ही खुला रहा ऐसी निगोददशाके अनन्त दुःखमे जीवने संसारका अनन्तकाल बिताया। एकेन्द्रिय पर्यायमे ही लगातार जन्म-मरण किया करे तो एकसाथ उसमे रहनेका उत्कृष्टकाल असंख्य पुद्गलपरावर्तन जितना अनन्त काल है, यह स्थिति ऐसी जीवकी समझना कि जो त्रस होकर फिर एकेन्द्रियमे गये हों अनादिके एकेन्द्रिय जीवके लिये यह बात लागू नहीं होती, उस एकेन्द्रियपर्यायमे बादर या सूक्ष्म सभी भव आ जाते है। यदि अकेले सूक्ष्म-एकेन्द्रिय भवोंमे ही निरन्तर जन्म मरण करता रहे तो उसका उत्कृष्टकाल असंख्यात लोकप्रमाण समय (असंख्यातकाल) है, अकेले बादर एकेन्द्रियमें जन्म-मरण करनेका उत्कृष्टकाल असंख्यात-असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणीकालके प्रमाण है। बादर एकेन्द्रियमे भी पृथ्वीकाय आदि प्रत्येकमे रहनेका उत्कृष्टकाल ७० कोडाकोडी सागरोपम है। समुच्चयरूपसे वनस्पतिकायमें रहनेका काल असंख्यात पुद्गलपरावर्तन है, परन्तु अकेले निगोदमे (साधारण वनस्पतिकायमे) ही जन्म-

मरण करता रहे और बीचमें अन्य भव न करे तो ऐसे इतर-निगोदमें रहनेका उत्कृष्ट काल ढाई पुद्‌गलपरावर्तन है। यह बात व्यवहारराशिके जीवोंकी है, उनसे अनन्तगुणे जीव तो ऐसे हैं कि अनादिसे अब तक निगोदमें ही जन्म-मरण करते रहते हैं, निगोदमेंसे निकलकर दूसरी गतिमें अब तक वे आये ही नहीं। इसप्रकार बहुत दीर्घकाल तक जीव एकेन्द्रिय पर्यायमें ही मिथ्यात्वके कारण महान दुःखी हुआ। उसमेंसे निकलकर त्रसपर्याय पाना दुर्लभ है। त्रसपर्यायमें पर्याप्तरूपसे रहनेका उत्कृष्टकाल दो हजार सागरोपम है और त्रसपनेमें भी मनुष्य-पर्यायका मिलना बहुत कठिन है; उसमें सम्यग्दर्शनादि बोधि की एवं मुनिदशाकी दुर्लभताका तो क्या कहना ?—

मनुष होना मुश्किल है, साधु कहांसे होय ?
साधु हुआ सो सिद्ध हुआ, करनी रही न कोय।

अरे, मनुष्यपनेकी इतनी दुर्लभता है। ऐसा मनुष्यपना तुझे मिला है, तब हे जीव! चार गतिके दुःखोंसे छूटनेके लिये तू बोधिभावना भा। उसीके लिये यह उपदेश है, क्योंकि—

मिथ्यात्व-आदिक भावको चिरकाल भाया है तूने;
सम्यक्त्व-आदिक भाव रे! भाया कभी नहीं है तूने।

(नियमसार ९०)

जीवोंने अज्ञानसे रागकी भावना भाई है, परन्तु रत्नत्रय धर्मकी भावना कभी नहीं भाई। भावनाका अर्थ है परिणमन; रागमें तन्मय होकर परिणमा परन्तु रागसे भिन्न सम्यग्दर्शनादिरूप

परिणमन नहीं किया, इस कारण जीव संसारमे रुल रहा है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान चारित्रकी प्राप्ति और मिथ्यात्वादिका त्याग—ऐसी दशा जीवको अतीव दुर्लभ है, उसके बिना अनन्त जीव निगोदके दुःखसागरमें पड़े है। सब जीवोंके अनन्तवां ही भाग निगोदमेसे बाहर आता है। एक ओर निगोदके अतिरिक्त अन्य सब जीव और दूसरी ओर निगोदके जीव, उनको जब देखो तब निगोदके जीव अनन्तगुणे ही रहेंगे। उस निगोदमेंसे निकलकर पृथ्वीकाय आदिमें आना भी दुर्लभ है, तब मनुष्यपनेकी दुर्लभताका तो क्या कहना?

निगोदसे अनन्तकालमे निकलकर कोई जीव पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु या प्रत्येक वनस्पतिमे आता है, तो वहा भी सम्यग्दर्शनके बिना महा दुःख पाता है। ऐसा कोई नियम नहीं कि निगोदसे निकलनेवाला जीव अनुक्रमसे पृथ्वी-जल आदिमे ही आवे, कोई जीव वहांसे निकलकर सीधा मनुष्य भी हो सकता है। बादर पृथ्वीकायमे एवं बादर जलकाय-अग्निकाल-वायुकाय तथा बादर प्रत्येक वनस्पति-काय—उसमे प्रत्येकमे रहनेकी उत्कृष्ट स्थिति ७० कोडाकोडी सागरकी है,—जिसमे असख्य भव हो जाते हैं और पर्याप्त या अपर्याप्त दोनों प्रकारके भव उसमे आ जाते है। यदि अकेले पर्याप्तकी अपेक्षासे कहा जाय तो उसमें प्रत्येकमे रहनेका उत्कृष्टकाल संख्यात हजार वर्ष है। (एक ही तरहके भवोमे लगातार जन्म-मरण करते रहनेकी जितनी कालमर्यादा हो उसको 'भवस्थिति' कहते हैं।) विकलेन्द्रियमे (दो, तीन या चतुरइन्द्रियमे) रहनेका-

उत्कृष्टकाल संख्यात हजार वर्ष है। पंचेन्द्रियपनमें रहनेका काल कुछ अधिक हजार सागरोपम है। त्रसपनेमे रहनेका उत्कृष्ट काल अधिक दो हजार सागरोपम है। ऐसा त्रसपना पा करके भी जो जीव आत्माकी समझ नहीं करेगा वह त्रसस्थितिका काल पूरा होने पर फिर स्थावर-एकेन्द्रियमे चला जायगा। त्रसपर्यायका दो हजार सागर कहा वह तो उत्कृष्टकाल कहा है, सभो जीव इतने काल तक त्रसपर्यायमे नहीं रहते, बहुतसे जीव तो अल्प ही कालमे त्रसपर्याय पूर्ण करके फिर एकेन्द्रियमे चले जाते है और कोई विरले जीव आत्माकी पहचान करके, आराधना करके, त्रसपर्यायको छेदकर मोक्ष दशाकी प्राप्ति कर लेते हैं। त्रसकी दो हजार सागरकी उत्कृष्ट स्थितिके भोगनेवाले तो थोडे ही होता है।

प्रश्न—एक सागरोपममे कितने काल होते है?

उत्तर—एक सागरोपममे असख्य वर्ष होते हैं,-जिसका प्रमाण ऐसे है—

एक योजनकी गहराईवाला और उतना ही व्यासवाला गोलाकार खड्ढा हो, तत्कालके जन्मे हुए मेढेके कोमल बालोंके छोटे टुकड़े-जिसका दो भाग कैंचीसे न हो सके,-उनसे वह गड्ढा ठसाठस भरा हो, प्रत्येक सौ वर्षोंके बाद उनमेसे एक टुकडा बाहर निकाला जाय, इसप्रकार करते करते पूरा खड्ढा खाली होनेमे जितना समय लगे उतने समयको एक 'व्यवहारपल्य' कहत हैं अथवा खड्ढे की उपमा देकर नाप किया इस कारण उसे 'पल्योपम' कहते हैं। (खड्ढा अर्थात् पल्य, उसकी जिसे उपमा हो वह पल्योपम)

ऐसे असंख्य व्यवहारकल्पका एक उद्धारकल्प,

असख्य उद्धारकल्पका एक अद्धाकल्प;

ऐसे दस कोडाकोडी अद्धापल्यका एक सागरोपम होता है।

(एक करोडको एक करोडसे गुनने पर एक कोडाकोडी होते हैं।)

पृथ्वीकायिक जीवोंमे उत्कृष्ट आयुस्थिति २२००० वर्ष,
जलकायिक जीवामे उत्कृष्ट आयुस्थिति ७००० वर्ष,
अग्निकायिक जीवोमे उत्कृष्ट आयुस्थिति ३ दिनरात;
वायुकायिक जीवोंमे उत्कृष्ट आयुस्थिति ३००० वर्ष;
उपरोक्त चारोंमें वादर कायकी उत्कृष्ट भवस्थिति ७० कोडा-कोडी सागरोपम है।

प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवोंमे उत्कृष्ट आयुस्थिति दस हजार वर्षकी है, और उनमेसे प्रत्येकमे पर्याप्तरूपसे रहनेका उत्कृष्टकाल (भवस्थिति) सख्यात हजार वर्ष हैं—अर्थात् इतने कालतक उसीमे जन्म-मरण हुआ करता है।

साधारण वनस्पति अर्थात् निगोदकी आयु अन्तर्मुहूर्त ही है, उसमे रहनेका उत्कृष्टकाल (इतरनिगोदका) ढाई पुद्गलपरावर्तन है, परन्तु उसमे पर्याप्तदशाका भव लगातार किया करे तो भी अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त तक ही करते हैं। पर्याप्त एवं अपर्याप्त दोनों मिल करके ढाई-पुद्गलपरावर्तन जितना अनन्त काल उत्कृष्टरूपसे होता है। कोई जीव उससे कम समयमे भी निगोदमेसे बाहर आ जाता है।

यहां कहते हैं कि अरे ! अनादिकालसे परिभ्रमणमे रुलते हुए जीवने चारों गतिमे अवतार कर-करके महान दुःख भोगे, उसमे बहुत दुर्लभ ऐसा यह मनुष्यभव मिला और चौरासीके चक्करमेसे बाहर निकलनेका और मोक्षके साधनेका अवसर हाथ आया, अब ऐसे अवसरमे भी यदि गाफेल रहकर विषय-कषायोंमे काल गमायेगा तो हे भाई ! अन्धेकी तरह तू यह अवसर चूक जायगा। इसका दृष्टान्त—

एक अन्ध मनुष्यको शिवनगरीमे–मोक्षनगरीमे प्रवेश करना था। नगरीके कोटको एक ही दरवाजा था। किसी दयावानने उसको मार्ग दिखाया कि इस गढकी दीवारसे हाथ लगाकर चले जाओ, चलते-चलते जब प्रदेशद्वार आवे तब भीतरमे प्रवेश करके नगरीमें पहुँच जाना, बीचमे कहीं प्रमादमे मत रुकना। उसके कहे अनुसार गढकी दीवारसे हाथ लगाकर वह अन्ध मनुष्य फिरने लगा, किन्तु बीच-बीचमें प्रमादी होकर कभी पानी पीनेको रुके, कभी शरीर खुजानेको रुके, ऐसे चलते चलते जब दरवाजा निकट आया कि बराबर उसी वक्त भाईसाहब अपने शिरकी खाज खुजलाता हुआ आगे चला गया और दरवाजा छूट गया पीछे। ऐसे वह अंधा मोक्षनगरीमे प्रवेश करनेका अवसर खोकर फिर-फिरसे चक्करमे ही रहा। ऐसे इस चौरासीके चार गतिके चक्करमे बडी कठिनाईसे मनुष्य अवतार मिला, मोक्षपुरीमे प्रवेश करनेका अवसर आया और मोक्षका दरवाजा दिखलाने वाला संत भी मिला, उस सन्तने करुणापूर्वक मार्ग भी दिखाया कि अन्तरमे चैतन्यमय

आत्माको स्पर्श करके चले आओ, चैतन्यको स्पर्शकर (लक्ष्यमें लेकर) चलनेसे मोक्षनगरीमे प्रवेश करनेका 'रत्नत्रय दरवाजा' आयगा। किन्तु ऐसा करनेकी बजाय उस अन्धे मनुष्यकी तरह जो अज्ञानी जीव रागमे या देहकी क्रियामे धर्म मानकर उसीकी संभालमे (-देहबुद्धिमे) रुक जाता है और आत्माको पहचाननेकी परवाह नहीं करता वह मूर्ख मोक्षनगरीमे प्रवेश करनेका यह अवसर चूक जायगा और फिर चौरासीके चक्करमे पडकर चार गतिमे रुलेगा। अत हे जीव! उस अन्धेकी तरह तू भी इस अवसरको मत चूक जाना। देहकी या मान-मरतबेकी परवाह छोड़कर आत्माके हितकी संभाल करना। जब एकेन्द्रियमे था तब तू अनंतवार गाजर-मूलीके साथमे मुफ्तमे बिका, तो अब अभिमान काहेका? जब एकेन्द्रियके अवतारमे गाजर-मूलीमे अवतरा था और शाकभाजी बेचनेवालेके यहा गाजर-मूलीके ढेरमे पडा था, शाक खरीदनेवालेके साथमे छोटा बच्चा भी आया, शाक लेनेके उपरान्त उसने एक गाजर या मूली मुफ्तमे मांगी और शाकवालेने वह दे दी, तब उसमे वनस्पतिकाय रूपसे वह जीव बैठा था, सो वह भी गाजर-मूलीकी साथमे मुफ्तमे चला गया। इसप्रकार अनन्तवार मुफ्तके भावमे बिक गया और अब मनुष्य होकर मान-अपमानकी कल्पनामे जीवनको व्यर्थ क्यो गँवा रहा है? भाई, अल्पकालका यह मनुष्य अवतार, उसमे आत्महितके लिये जो करनेका है उसकी दरकार कर।

कोई जीव लगातार मनुष्यके ही अवतार करे तो अधिकसे अधिक आठ भव हो सकते है, उसके बाद वह अवश्य मनुष्यसे

अतिरिक्त किसी अन्य गतिमें चला जाता है। त्रसपनेकी उत्कृष्ट स्थिति दो हजार सागरोपम मात्र है,—उनमें तो द्वीन्द्रियादिके भी अवतार आ जाते हैं। पंचेन्द्रिय और उसमें भी मनुष्य होना वह तो अतीव दुर्लभ है, उसमें भी सच्चा वीतरागी धर्म समझनेका अवसर महान दुर्लभतासे मिलता है। ये सभी दुर्लभताका वर्णन कार्तिकेयस्वामीने बोधिदुर्लभ अनुप्रेक्षामें किया है।

संसारमें जीवका दीर्घकाल तो निगोदमें ही बीता। आलू-सक्करकन्द आदिके छोटेसे सरसोंके बराबर टुकडेमें असंख्यात औदारिक शरीर हैं, उनमेंसे हर एक शरीरमें अनन्त जीव हैं,—कितने अनन्त? कि अभी तकके अनन्तकालमें जो अनन्त सिद्ध हुए उनसे अनन्तगुने निगोद जीव हर एक शरीरमें हैं। उसमेंसे निकलकर त्रसपर्यायका पाना अर्थात लट-चींटी आदि होना यह भी चिन्तामणिके समान कितना दुर्लभ है? यह बात अब आगेके श्लोकमें कहेंगे।

त्रसपर्यायकी दुर्लभता

संसारमे भ्रमण करते हुए जीवको पंचेन्द्रिय होकर सम्यक्त्वादि प्राप्त करना—यह तो कोई अपूर्व चीज है, परन्तु एकेन्द्रिय-पर्यायसे छूटकर द्वीन्द्रियादि त्रसपर्यायका पाना भी कितना दुर्लभ है ? यह बात कहते हैं—

(गाथा-५)

दुर्लभ लहि ज्यों चिन्तामणि त्यों पर्याय लही त्रसतणी ।
लट-पिपील-अलि आदि शरीर धरधर मर्यो सही बहु पीर ॥ ५ ॥

जैसे चौकके बीचमे चिन्तामणिकी प्राप्ति होना दुर्लभ है, वैसे निगोद और एकेन्द्रियमेसे निकल करके दोइन्द्रिय-त्रीइन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय (लट-चींटी-भँवरा) ऐसे विकलत्रयरूप त्रसपर्याय भी अतीव दुर्लभतासे प्राप्त होती है और उसमे देह धारण करके भी जीव बहुत पीड़ा सहन करता है। लट-चींटी आदि जीवोंको महान दु ख है, नरकसे भी अधिक दु ख उनको है, उन्हें न तो पांच इन्द्रियोंकी पूर्णता है और न विचारशक्ति भी, अत उन जीवोंको 'विकल' कहा जाता है। एकेन्द्रियमेसे निकलकर क्वचित् विकल-त्रयमे आये, तब भी हाथी वगैरहके पैरसे कुचलाकर मर जाये, पानीमे बह जाये, अग्निमे भस्म हो जाये, चिड़ियां आदि उसे खा जाये,—ऐसे अत्यन्त पीड़ा सहित मरकर फिर एकेन्द्रियमे ऊपजे। विकलत्रयमे रहनेका उत्कृष्टकाल कोटिपूर्व है। विकलत्रयमेसे पंचेन्द्रिय होना दुर्लभ है।

देखो, ऐसी दुर्लभता दिखाकर क्या कहना चाहते हैं ? ऐसा कहते हैं कि हे जीव ! जिस भावके कारण अनन्त दीर्घकाल तक एकेन्द्रियादिके अवतारमे ऐसे दुःख सहन किये उस मिथ्यात्वादि भावका त्याग करके मोक्षसुखका साधन करनेका यह अवसर तुझे मिला है। फिर ऐसा अवसर मिलना बहुत कठिन है, अतएव जागृत होकर ऐसा वीतरागविज्ञान कर कि फिर कभी संसारके ऐसे दुःख स्वप्नमे भी न हों। बहुत दुःख तूने भोगे अब तो उनके अन्तका उपाय कर।

जैसे मनुष्यको चिन्तामणि क्वचित् महत्पुण्यसे मिलता है, बारबार नहीं मिलता, वैसे संसारसमुद्रमे जीवोंको एकेन्द्रियमेसे दो इन्द्रिय होना भी चिन्तामणिसे अधिक दुर्लभ है, तब पंचेन्द्रिय होनेकी तो क्या बात ? क्वचित् कोई जीव विशुद्ध परिणामके बलसे एकेन्द्रियमेसे निकलकर त्रसमे आते है। अरे, चींटी या लट होना भी जहा दुर्लभ, वहां मनुष्यपनेकी दुर्लभताका तो क्या कहना ? भाई ! तुम तो अब मनुष्य हुआ हो तो अब भवसे भयभीत होकर ऐसा उपाय करो कि आत्मा चार गतिके दुःखोंसे छूटे। जैसे सागरके मध्यमे फेंका हुआ रत्न फिरसे मिलना बहुत कठिन है वैसे यदि आत्माकी दरकार न करके वह मनुष्यपना विषयोंमे ही गुमा दिया तो संसार-समुद्रमे वह फिर प्राप्त होना दुर्लभ है। संसारको हीरा—जो कि वास्तवमे एक तरहका पत्थर ही है—मूल्यवान दिखता है और उसकी प्राप्ति होने पर खुश होता है, परन्तु उत्तम हीरोंके ढेरसे भी जिसकी प्राप्ति नहीं हो सकती ऐसा यह मनुष्यत्व रूप

हीरा मिला है, उसकी महत्ता समझकर आत्माको क्यों नहीं साधता? मनुष्य होकर यदि आत्माको समझे तब ही मनुष्य अवतारकी सफलता है। किन्तु जो ऐसे अमूल्य मनुष्य जीवनको विषय-कषायोंमें ही व्यर्थ खो देता है उसकी मूर्खताका क्या कहना? वह तो मनुष्यभव पूरा करके नरकादिमें चला जायेगा।

लट-चींटी-भ्रमर आदि विकलत्रय जीव महान दुःखी हैं। लट होने पर कौआ उसे खा जाये, चींटी होने पर पैरके नीचे कुचल जाये, भ्रमर होने पर कमलमें बंद हो जाये, कदाचित् ऐसा संयोग न हो तो भी मोहकी तीव्रतासे वे जीव निरन्तर दुःखी हैं, जैसे अतिशय मारसे मनुष्य बेहोश हो जाता है, वैसे दुःखकी अतिशय वेदनासे उन जीवोंकी चेतना बेहोश हो गई है, वे अत्यन्त मूर्छित हो रहे हैं। द्वि-त्री-चतुरिन्द्रिय जीव विकलेन्द्रिय हैं। एकेन्द्रियमेंसे विकलेन्द्रिय होना भी दुर्लभ है। तथापि ऐसा कोई नियम नहीं है कि एकेन्द्रियमेंसे विकलेन्द्रिय हो करके ही बादमें पंचेन्द्रिय हो सके, कोई जीव बीचमें विकलेन्द्रिय न होकर एकेन्द्रियसे सीधा पंचेन्द्रिय भी हो जाता है,—जैसे भरतमहाराजाके ३२०० पुत्र, वे निगोदमेंसे सीधे मनुष्य होकर उसी भवसे मोक्ष गये।

यहाँ तो ऐसा कहना है कि एकेन्द्रियमेंसे निकलकर मुश्किलसे कदाचित् द्वि-त्रि या चतुरिन्द्रिय होवे तो उसमें भी मिथ्यात्वादिके कारणसे जीव महान दुःखी हो है। मिथ्यात्वभाव छोड़नेका उद्यम करना वही दुःखसे छूटनेका उपाय है। आनन्दका पुंज प्रभु आत्मा, वह स्वयं अपनेको भूलकर देहबुद्धिसे दुःखी हो रहा है, उसे मालूम

भी नहीं कि मैं जीव हूँ और सुखका भण्डार तो मुझमे ही भरा है। अभी मनुष्य अवतारमे उसको पहचान करनेका अवसर मिला है, तब बाहरी सुविधासे या मान-अपमान देखनेमे तू क्यों रुक गया? अरे, तेरे दु खको देखकर ज्ञानीको करुणा आती है, इसलिये उस दु खको मेटनेका उपाय तुझे दिखाते है।

आत्माका स्वभाव चेतना है, परन्तु अपने चेतनभावको भूल करके वह अज्ञान चेतनारूप हुआ, एवं राग-द्वेषको करनेरूप कर्म-चेतनारूप हुआ तथा दु खको भोगनेरूप कर्मफल चेतनारूप हुआ। एकेन्द्रियपनेमे तो दु खवेदनरूप कर्मफलचेतना ही मुख्य थी, त्रस होकर भी राग-द्वेष करनेरूप कर्मचेतनामे ही लीन रहकर दुःखको ही भोगता है। कर्म व कर्मफल उन दोनोंसे भिन्न ज्ञानचेतनाका अनुभव जब तक न करे तब तक जीवको सुख नहीं होता। ज्ञान-चेतना स्वयं आनन्दरूप है। ज्ञानचेतना ही मोक्षका कारण है। ज्ञानचेतना कहो या वीतरागविज्ञान कहो, दोनों एक हैं।

भाई, अपनी ज्ञानचेतनाको भूलकर शरीरके जड़ कलेवरमे तू मोहित हो गया, इस कारण तुमने बहुत शरीर धारण किये व छोड़े, ऐसे जन्म-मरणमे बहुत पीड़ा तुमने सहन की। आत्माका अभाव तो नहीं हो जाता परन्तु देहबुद्धिके कारण जन्म-मरणके बहुत दु ख उसने सहन किये और बारबार भावमरणसे मरा। अरे, एक अंगुलीके कुचल जाने पर भी मोही जीव कितना दु खी होता है? तो जिसने शरीरको ही सर्वस्व मान रखा है उसे मृत्युके

समय शरीरकी ममतासे कैसा तीव्र दु ख होगा ? लम्बी लट हो और उस पर पत्थर गिरे, उसका आधा शरीर नीचे कुचल जाये, पत्थरसे दबा हुआ शरीर निकालनेके लिये जोर करने पर वह टूट जाये और फिर वह तड़प-तडपके मरे, ऐसा मरण अनन्तकालसे जीव कर रहा है। देहसे रहित अपना अस्तित्व है—उसको कभी पहचाना नहीं, तो जीव सुख किसमेसे लगा ? देहमे तो कुछ भी सुख नहीं है, देहकी ममतामे तो दु ख ही है। सुख आत्मामे भरा है, उसकी पहचानसे ही सुख होता हे।
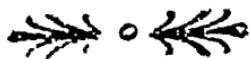
एकेन्द्रिय पर्यायसे छूटकर शुभपरिणामसे कदाचित त्रसपर्याय प्राप्त हुई तो वहां भी जीवने दु खका ही अनुभव किया। कभी चींटी या मक्खी होकर गन्नेके रसका स्वाद लेनेमे ऐसा एकाकार हो गया कि गन्नेके रसकी साथ वह भी उबल करके मर गया। कभी लकडीके वीचमें कीडा हुआ और अग्निकुण्डमे उस लकडीके साथ वह भस्मीभूत हो गया। ऐसे-ऐसे अनेक दु'ख, जो कि वाह्यमे प्रगट दिखते है उनकी थोडीसी वात की, इसके उपरान्त अन्तरमे तो वे वेचारे असंज्ञी प्राणी अनन्त दु खका वेदन कर रहे हैं। कहां जाकर करें वे अपने दु'खकी पुकार ? कोई उसे मारे-काटे तब किसके पास जाकर वे शिकायत करें कि 'रे! ये लोग हमको मार डालते हैं!' भाई! कौन सुनेगा तेरी पुकार और कौन मेटेगा तेरा दुःख ? तेरी ही भूलसे तू दु:खी हो रहा है और वीतरागविज्ञानके द्वारा तू ही तेरे आत्माको दु'खसे छुड़ा।—दूसरा क्या करे ? दूसरोंने तुझे दु:ख नहीं दिया और दूसरा तुझे दु खसे छुड़ा भी नहीं सकता।

मिथ्यात्वसे जीव ही अपना शत्रु है और सम्यक्त्वसे जीव स्वय ही अपना मित्र है। जीव स्वयं अपने ही सम्यक् या मिथ्याभावोंके अनुसार सुखी या दुःखी होता है, कोई दूसरा उसे सुखी-दुःखी नहीं करता।

जीव जब तक देहसे भिन्न अपने चेतनस्वरूपकी सम्भाल न करे तब तक 'भूल आपको भरमत वादी'—दुःखी होकर ससारमे ही रुलता है। जैसे इतिहासकार प्राचीन बातें सुनाते हैं वैसे यहां शास्त्रकार जीवको अनादिकालके परिभ्रमणकी कथा सुनाते हैं हे जीव! पूर्वकालमे तूने कैसे कैसे दुःख भोगे, उनका कारण क्या है और अब उनसे छुटकारा कैसे हो! यह बात सन्त तुझे दिखाते हैं।

प्रथम तो एकेन्द्रियमेसे निकलकर त्रस होना दुर्लभ है, और त्रस होने मात्रसे भी दुःखसे छुटकारा नहीं हो जाता। आत्मज्ञानसे ही दुःखोंसे छुटकारा होता है। एकबार चातुर्मासके समयमे जमीनके अन्दर बडी-बडी पंखवाले बहुत जीवोंकी उत्पत्ति हुई, बडी मुश्किलसे वे बिलसे बाहर निकल रहे थे, किन्तु बाहर निकलते ही कौआ या चिडियां चोंचमे पकडकर उन्हें खा जाते थे। वे बेचारे अभी तो उत्पन्न होकर बाहर हो आते थे कि सीधे ही कौओंका भक्ष्य बन जाते थे। अरे, ऐसा सुनकर या नजरोंसे देखकर भी जीवकी आंखें क्यों नहीं खुलती? वह समझता है कि यह तो सब दूसरोंके लये ही है। किन्तु अरे भाई! ऐसा दुःख अनन्तवार तुमने भी सहन किया, परन्तु अभी साताके मदमे उसको तुम भूल गये। दूसरे जीवोंको जैसा दुःख हो रहा है वैसा दुःख अनन्तबार तुम भी भोग

चुके हो। अत: अब सावधान होकर स्व-परकी यथार्थ समझ करो। बापू! यह मानवजीवन बहुत महँगा है, और उसमे भी धर्मका सुनना व समझना तो अतीव दुर्लभ है। बहुतसे जीव रागको या पुण्यको ही धर्म समझकर उसमे ही फस रहे है। बहुत लोग बाह्य वैभव, लक्ष्मी आदिकी प्राप्तिके लिये दौड़-धूप मचा रहे हैं और राग-द्वेष करके हैरान हो रहे हैं। परन्तु अपना चैतन्यवैभव प्राप्त करनेके लिये उद्यम नहीं करते। उसकी कोई कमीत ही उन्हें नहीं दिखती। भाई! बाह्य पदवियां या बाह्य वैभवमें तेरा कुछ भी कल्याण नहीं है, अनन्तबार वह मिला तो भी तू संसारमे ही रहा, दु:खी ही रहा, अन्तरग चैतन्यपदके वैभवकी प्राप्ति यदि एकबार भी कर ले तो तेरी मुक्ति हो जायगी और तुझे महान सुखकी प्राप्ति होगी। ऐसा मनुष्य अवतार और उसमे भी आत्माकी समझका ऐसा सुअवसर महद्‌भाग्यसे तुझे मिला है, तो अब आत्महितका उद्यम करके उसे तू सफल बनाना।

पंचेन्द्रिय-तिर्यंचके दुःखोंका वर्णन

अज्ञानसे संसारमे परिभ्रमण करते करते तिर्यंचगतिमे एकेन्द्रियसे चतुरिन्द्रिय तककी पर्यायोंमें जीवने जो दुःख भोगा उसका कथन किया जब कभी वह पचेन्द्रिय तिर्यंच हुआ तब क्या हुआ यह कहते हैं—

(गाथा-६)

कबहूं पंचेन्द्रिय पशु भयो, मन बिन निपट अज्ञानी थयो ।
सिंहादिक सैनी ह्वै क्रूर, निबल पशु हति खाये भूर ॥ ६ ॥

जीव कदाचित् पंचेन्द्रिय हुआ तो असंज्ञी हुआ, उसे पाच इन्द्रियाँ तो मिली परन्तु मन रहित हुआ, अत विचारशक्तिसे हीन मूढ़ ही रहा, असंज्ञीदशामे तीव्र अज्ञान है, उसे हित-अहितका कुछ भी विचार नहीं है, उपदेशको ग्रहण करनेकी शक्ति ही नहीं है। यद्यपि उसे कान हैं, वह सुनता भी है परन्तु समझनेकी बुद्धि या विचारशक्ति उसको नहीं है, भाषाज्ञान उसको नहीं है। उसके ज्ञानका क्षयोपशम बहुत अल्प है और मोह तीव्र है। इस कारण पंचेन्द्रिय होकर के भी वह जीव बहुत दुःखी है। नरकके जीव तो संज्ञी हैं, वे अपने हित-अहितका विचार कर सकते हैं, हितोपदेशको ग्रहण कर सकते हैं, उन नरकके जीवोंसे भी असंज्ञी जीव विशेष दुःखी हैं। असंज्ञीदशामे जीवको सम्यक्त्वादि धर्मकी प्राप्ति नहीं हो सकती। वीतरागविज्ञानरूप धर्मकी प्राप्तिका अवसर संज्ञीदशामे ही है।

सर्प-मेढक-मछली आदि तिर्यंच संज्ञी (मनवाले) भी होते हैं और असंज्ञी भी होते हैं। किसीका शरीर बड़ा हो परन्तु मनसे रहित हो, वे देखते हैं-सुनते हैं, परन्तु उनमे विचार करनेकी बुद्धि नहीं होते। विचाररहित प्राणीको मूर्ख कहा जाता है, वैसे ये असंज्ञी जीव अत्यन्त मूर्ख हैं, वे कुछ भी हितोपदेश ग्रहण नहीं कर सकते। जीव पंचेन्द्रिय हो करके भी ऐसा मूढ रहा और उसने बहुत दुःख भोगा। अरे प्रभु! अब तो तुम मनवाला मनुष्य हुआ हो, आत्माका विचार करनेकी शक्ति तुम्हें प्रगट हुई है, तो अब इस अवसरको मत चूकना। क्योंकि—

यह मानुषपर्याय सुकुल सुनिवो जिनवानी।
इहविध गये न मिले सुमणि ज्यों उदधि समानी॥

निजस्वरूपको भूलकर संसारमे भ्रमण करता हुआ जीव क्वचित् संज्ञी भी हुआ तो सिंह-बाघ-अजगर आदि क्रूर तिर्यंच हुआ, उसको मन मिला, विचारशक्ति मिली, परन्तु परिणाम विशुद्ध न हुए, अतः क्रूरतासे खरगोश हिरनादि दूसरे निर्बल पशुओंको मार-मारके खाया। इसप्रकार महान पाप करके नरकादिमे भ्रमण किया।

कोई जीव एकेन्द्रियमेसे सीधे सज्ञी पचेन्द्रिय होते हैं, बीचमे विकलेन्द्रियपना या असंज्ञीपना होना ही चाहिए—ऐसा कोई नियम नहीं है। एकेन्द्रियसे सीधा मोक्षमे या स्वर्गमे या नरकमें कोई जीव जा नहीं सकता, किन्तु तिर्यंचमे या मनुष्यमे ही जाता है। यहा तो कहते हैं कि—अरे, सज्ञी पंचेन्द्रिय होकर के भी अज्ञानी

जीवने जरासी भी दया न करके अत्यन्त निर्दयतासे क्रूर होकर निर्बल पशुओंको एवं मनुष्योंको भी चीर करके फाड़ खाया। महावीर भगवानका जीव भी पूर्वके दसवें भवमें जब सिंह था और अज्ञानदशामे था तब क्रूरतासे हिरनको मारके खाता था। उसी वक्त आकाशसे दो मुनिराज उतरे और निडरतासे सिंहके सामने आकर उपस्थित हुए। मुनियोंकी वीतरागमुद्रा देखकर सिंह स्तब्ध हो गया और आश्चर्यसे उनकी ओर देखता रहा। तब मुनियोंने उसे सम्बोधन किया कि अरे सिंह! सचमुचमे तू सिंह नहीं है, तू तो चैतन्यभगवान है, तू भविष्यमें तीनलोकका नाथ तीर्थंकर होनेवाला है। भगवानके श्रीमुखसे हमने सुना है कि तेरा जीव आगे चलकर दसवें भवमे महावीर तीर्थंकर होगा। अरे, तू जगका तारनहारा, क्या यह क्रूर परिणाम तुझे शोभा देता है? —नहीं, कभी नहीं। हिंसाके यह क्रूर परिणामोंको तू शीघ्र ही छोड दे। अन्दरमे शान्त परिणामी आत्मा है उसे लक्षमें ले। अरे, यह कैसा गजब कि पचेन्द्रिय पंचेन्द्रियको मारे! चेतनको ऐसी हिंसाका परिणाम शोभा नहीं देता।

मुनियोंका उपदेश सुनकर सिंह चकित रह गया, तत्क्षण उसका परिणाम पलट गया। वह आश्चर्यसे मुनियोंके सामने देख रहा कि अरे! ये हैं कौन? साधारण लोग तो मुझे देखते ही भयभीत होकर दूर भागते है, जब कि ये तो सामने आकर निर्भयरूपसे मेरी सन्मुख खडे हैं, और वात्सल्यसे मुझे मेरे हितकी बात सुना रहे हैं। इसप्रकार सिंहका क्रूर परिणाम छूट गया और अन्तर्मुख होकर

उसने सम्यग्दर्शन प्राप्त किया। फिर उसने बहुत भावसे मुनिवरोंकी भक्ति की . प्रदक्षिणा दी .और पश्चातापसे उसकी आखोंसे अश्रुकी धारा बहने लगी।

तिर्यंच गतिमें धर्म प्राप्ति कोई जीवको होती है, भगवानकी धर्मसभामे भी उपदेश सुनकर कोई-कोई तिर्यंचके जीव धर्मको प्राप्ति कर लेते हैं। परन्तु सामान्यतया अज्ञानदशामे जीव सिंहादिक क्रूर तिर्यंच होकर दूसरे निर्वल प्राणियोंकी चीरफाड़ करता है। जो दसवें भवमे तो ऐसा जगदुद्धारक तीर्थंकर होनेवाला है कि जिसकी समीपता पाकर सिंहादिक क्रूर जीव भी अपना हिंसकपना छोड देगा,—ऐसे होनहार तीर्थंकरका जीव भी अज्ञानदशामे सिंह होकर हिरनको मार रहा था। ऐसे क्रूर पापपरिणामोंसे छूटकर आत्माका हित करनेके लिये यह उपदेश है। कैसे परिणामोंसे तुम संसारमें दु:खी हुआ और अब क्या करनेसे दु ख मिटकर सुख हो,—उसका उपाय श्रीगुरु दिखाते हैं। वह उपाय है—वीतरागविज्ञान।

अनन्तबार पंचेन्द्रिय हो करके भी जीवने अज्ञानवश ऐसा क्रूर काम किया कि जिसे देखकर दूसरेका भी दिल कांप उठे। एकबार एक राजा शिकार खेलनेको गया, साथमे एक शेठको भी ले गया—जो कि बनिया था, जंगलमे एक भैसा बंधा हुआ था और सिंह उसे फाड़कर खा रहा था। यह देखते ही शेठने कहा—अरे बापू! मुझसे यह देखा नहीं जाता। तब राजाने कहा—अरे, तुम बनिया लोग डरपोक होते हो, हम तो शूरवीर क्षत्रिय हैं, एक हाथसे करेंगे और दूसरे हाथसे भोगेंगे। हा! ऐसे निष्ठुर परिणामवाले जीव

नरकमें न जाये तो अन्यत्र कहाँ जाये? अभी नरकमे उसे असह्य दु खकी कितनी पीड़ा होती होगी?–उसे तो वह वेदे और भगवान जाने। उसकी पुकार सुननेवाला वहा कोई नहीं है। रे! पाप करते समय जीव अन्धा हो जाता है,—पापके फलको वह नहीं देखता, किन्तु जब उसका फल भोगना पड़ता है तब असह्य दुःख होता है।

यह प्रकरण चल रहा है तिर्यंचके दु खोंका, कभी सञ्ज्ञीपंचेन्द्रिय तिर्यंच हुआ तब भी जीवने ऐसा क्रूर परिणाम किया कि आत्माके विचारका अवकाश ही न रहा। एकबार एक बडे अजगरने बाघको अपनी लपेटमे लेकर भींस डाला अजगरकी लपेटसे छूटनेके लिये बाघ घण्टों तक छटपटाया किन्तु अन्तमे वह मर गया। बड़ा मच्छ छोटे मच्छको खा जाता है। अरे, जब मनुष्य ही मनुष्यको निर्दयरूपसे मार डालता है तब फिर पशुओंकी तो क्या बात? कुत्ती अपने बच्चोंको जन्म देकर फिर स्वयं ही उनको खा जाती है। कैसी क्रूरता? ऐसे क्रूर परिणाम बहुत बार जीवने सेये। अरे, ऐसे हिंसक भावका बारबार सेवन करके जीव बहुत दु खी हुआ। कभी वह स्वय बलवान हुआ तब अन्य निर्बल पशुओंको मारकर खाया, और कभी स्वयं बलहीन हुआ तब दूसरे बलवान पशुओंके द्वारा वह खाया गया, यह बात आगेकी गाथामे कहेंगे।

संसारमे जीवोंका जीवन-मरण अपनी-अपनी आयुके अनुसार ही होता है, कोई दूसरा उनको न मार सकता है न जिला सकता है। किन्तु यहां जीवका परिणाम कैसा है यह दिखाना है। रे

किया वह तो मोक्षमार्गी हो चुका, वह तो अब आनन्दका अनुभव करता हुआ मोक्षको साधेगा। चारों गतिमे जो धर्मात्मा जीव हैं उन्हें दु खका यह वर्णन लागू नहीं होता, क्योंकि यह तो मिथ्यात्वसे होने वाले दु'खकी कथा है। धर्मी जीव, पूर्वमे धर्म पानेके पहले अज्ञानदशामे ऐसे दुःख भोग चुके हैं परन्तु अब तो सम्यक्त्वादि प्रगट करके सुखके पथमे लगे हैं, अत वे तो जिनेश्वरदेवके लघुनन्दन है, उनकी बलिहारी है—धन्यता है, वे दु खहारी और और सुखकारी ऐसे वीतरागविज्ञानके द्वारा सिद्धपदको साध रहे हैं।

यह पहले अध्यायमे मनुष्य-देव सहित चारों गतियोंके दु ख दिखाकर फिर दूसरे अध्यायमे कहेंगे कि—

'ऐसे मिथ्यादृग-ज्ञान-चर्णवश
भ्रमत भरत दु ख जन्म-मर्ण।'

चार गतिके ऐसे घोर दु ख मिथ्यादर्शन-मिथ्याज्ञान-मिथ्याचारित्रके कारणसे ही जीव भोगता है, अत यथार्थ वीतराग-विज्ञान करके उस मिथ्यात्वादिको छोडना चाहिए। निजस्वरूपकी पहचान न करनेसे जीव बहुत दु खी हुआ, अतएव निजस्वरूपकी पहचान करनी यही दु खसे छूटनेका उपाय है। स्वरूपकी बेसमझसे अनन्त दु'ख और स्वरूपकी सच्ची समझसे अनन्तसुख होता है।

निजस्वरूपका अनुभव नहीं करनेवाला जीव चारों गतिमे दुःखी ही है, उसे कहीं तनिक भी सुख नहीं है। अज्ञानमे सुख कहांसे हो? दु'खोंका यह कथन जीवको डरानेके लिये नहीं किया गया परन्तु वास्तवमे जो दु'ख जीव भोग रहा है वह दिखाया है।

जीवको यदि ऐसे दुःखोंका सचमुचमे भय हो तो उनके कारणरूप मिथ्यात्वभावको छोड़े और सुखके उपायरूप सम्यक्त्वादिका उद्यम करे।

शरीरका छेदन होने पर जीव दुःखी होता है कि हाय रे, मैं छिदा गया। वास्तवमे शरीरका छेदन होना यह तो कोई दुःख नहीं है, परन्तु अज्ञानीको देहमे ही अपना सर्वस्व दिखता है, देहसे अलग अपना कोई अस्तित्व ही उसे नहीं दिखता, इस कारण देहबुद्धिसे वह दुःखी है।

छेदाय या भेदाय, को ल जाय, नष्ट बने भले,
या अन्य को रीत जाय, पर परिग्रह नहीं मेरा अरे॥ २०९॥

ज्ञानी जानता है कि शरीरका छेदन-भेदन होने पर मेरा तो कोई छेदन-भेदन नहीं होता, मैं तो अखण्ड ज्ञान हूं,—जिसने ऐसा भान नहीं किया और देहमे ही आत्मबुद्धि करके मूर्छित हो रहा वह जीव छेदन-भेदनके प्रसंगमे दुःखी होता है। वह दुःख देहके छेदनका नहीं परन्तु मूर्छाका है।

तिर्यंच अवस्थामे अनन्त दुःख जीवने भोगा। खरगोश हिरन जैसे निर्बल प्राणी, बेचारे जगलमे घास खाकर जीनेवाले, उन्हें सिंह-बाघ आदि खा जाये, तब वे कुछ कर न सके और दुःखी होकर प्राण छोडे। हाथी जैसे बडे प्राणीको भी सिंह फाड खाता है, और सिंह-बाघको भी शिकारी लोग बन्दूकसे मार देते हैं। इस प्रकार मरता हुआ जीव दुःखी होता है क्योंकि उसे देहकी ममता नहीं छूटी। ममतासे ही दुःख है और ममताका मूल है अज्ञान।

यहाँ पर, दूसरा खा जाये छेद डाले इत्यादि संयोगके द्वारा कथन करके सामनेवाले जीवका क्रूर हिंसकभाव और इस जीवका दुःख दिखाना है। बाकी अरूपी आत्मा तो न किसीसे खाया जाता है न छेदा जाता है और न मरता है, ऐसे अपने आत्माको न पहचानकर अज्ञानसे अपनेको देहरूप ही माना है अतएव देहका छेदन-भेदन होने परमे ही मर गया—ऐसा समझता हुआ अज्ञानी प्राणी महादुःखी होता है।

प्रश्न—तो क्या ज्ञानीको देहके छेदन-भेदन होनेसे दुःख नहीं होता होगा ?

उत्तर.—ना, अज्ञानीको देहबुद्धिसे जैसा दुःख होता है वैसा ज्ञानीको कदापि नहीं होता, अनन्त दुःखके कारणरूप मिथ्यात्वको तो उसने छेद डाला है अतः किसी भी हालतमे मिथ्यात्वजन्य अनन्त दुःख तो उसे होता ही नहीं। मिथ्यात्वके अभावमे बाकीके राग-द्वेषसे जो दुःख हो वह तो बहुत अल्प है। अज्ञानी कदाचित आरामसे बैठा हो, शरीरमे कोई छेदन-भेदन होता न हो, फिर भी मिथ्यात्वभावके कारण उस वक्त भी वह अनन्तदुःख वेद रहा है। ऐसा कोई नियम नहीं है कि बाह्यमे संयोग प्रतिकूल हो तब ही जीवको दुःख हो। प्रतिकूल संयोगका कथन तो स्थूल-बुद्धिवाले जीवोंको समझानेके लिये है, साधारण लोगोंको बाहरके छेदन-भेदन आदिका दुःख भासता है, परन्तु अनन्त दुःखका मूल कारण मिथ्याभाव है उस मिथ्यात्वका अनन्तदुःख उनके लक्षमे नहीं आता। यहाँ चारगतिके दुःखोंके वर्णनके बाद तुरन्त ही (दूसरी ढालके

प्रारम्भमे) कहेंगे कि ये सभी दु ख मिथ्यात्वके निमित्तसे ही जीव भोगता है अत उस मिथ्यात्वका सेवन छोडके सम्यक्त्वादिमें आत्माको लगाना चाहिए।

जिसको मिथ्यात्वादि भाव नहीं उसे प्रतिकूलतामे भी दु'ख नहीं। देखो, यह सुकौशल आदि वीतरागी मुनिराज आत्माके आनन्दमे कैसा मशगूल है। बाह्यमे तो शरीरको बाघ खा रहा है, किसीका शरीर अग्निसे जल रहा है, किन्तु अन्तरमे आत्मा उपशमरसमे ऐसा तरबतर हो रहा है कि उसको जरा भी दु'ख नहीं होता,—क्यों नहीं होता? कारण कि दु खके कारणरूप मिथ्यात्वादिका अभाव है। शरीर भले ही जलता हो, मोहाग्निका अभाव होनेसे आत्माको कोई जलन नहीं है, आत्मा तो अपने चैतन्यके शातरसमे निमग्न है, अत वह तो निजानन्दकी मौज कर रहा है। यह सिद्धान्त है कि दु खका कारण मोह है, सयोग नहीं, वैसे ही सुखका कारण वीतरागविज्ञान है, संयोग नहीं।

आत्मा स्वयं सुखस्वभाव है, उसका सुख संयोगके द्वारा नहीं है, इन्द्रियविषयोंके द्वारा नहीं है, यह बात रगड़ रगडके प्रवचनसारमे समझायी है, वहा केवलीभगवानका अतीन्द्रियसुख दिखाकर आत्माका सुखस्वभाव सिद्ध किया है। सुखरूप या दु'खरूप स्वयं आत्मा परिणमता है, उसमे बाह्यपदार्थ उसे कुछ नहीं करते।

अरे, तुम स्वयं सुखस्वभावसे भरे हो, तुम्हारे सुखस्वभावकी तुम्हें खबर नहीं इस कारण दु खको ही तुम वेद रहे हो। परन्तु जरा सोचो तो सही—क्या दु ख वेदना जीवका स्वभाव हो

सकता है ?-नहीं। कोई बार नरकके किसी जीवको तीव्र दुःख-वेदनामें ऐसा विचार जागृत होता है कि अरे! यह कैसा दुःख? यह कितना त्रास? आत्माका स्वभाव ऐसा नहीं हो सकता,-इस प्रकार विचारके द्वारा अन्तरमें दुःखरहित ज्ञातस्वभावमें प्रवेश करके वह आत्माके अतीन्द्रियसुखका अनुभव कर लेता है। देख लो, जब जीव जागे तब कौन उसे रोक सकता है? नरकका भी संयोग उसे बाधा नहीं कर सकते, वहां भी जीव आत्मज्ञान कर लेता है। जब भी अपना कल्याण करना चाहे जीव कर सकता है, वह इतना महान सामर्थ्यवाला है कि अन्तर्मुहूर्तमें केवलज्ञान कर सके। यदि ऐसी निजशक्तिको जीव सँभाले तो अनन्तकालका अज्ञान एक ही क्षणमें नष्ट होकर अपूर्व वीतरागविज्ञान प्रगट हो जाय, और बादमें उग्र धारासे शुद्धताकी श्रेणी चढकर अन्तर्मुहूर्तमें ही केवल-ज्ञान प्रगट कर ले। प्रत्येक आत्मा ऐसा पूर्ण स्वभाव-सामर्थ्यवाला है।

जीव स्वयं अपनेको भूलकर मिथ्यात्वके कारण चार गतिमें जो दुःख भोग रहा है उसका खयाल करानेके लिये यहां बाह्यके प्रतिकूल संयोग (-छेदन-भेदन आदि) के द्वारा वर्णन किया है। उसने भीतरका दुःख तो किस प्रकारसे दिखाया जाय? बुद्धिगोचर दुःखोंसे भी अबुद्धिगोचर दुःख अनन्तगुणे है।

एकबार पालेज गांवमें देखा था कि पिंजरमें फँसे हुए चूहेके ऊपर एक लड़का क्रूरतासे धधकता हुआ पानी छिड़क रहा था, वह चूहा धधकते पानीके पड़नेसे जलता हुआ तडफड़ाता था; परन्तु पिंजरेमें फँसा हुआ वह चूहा बेचारा कहां जाय? किसके

पास पुकार करे? चीख-चीखकर मर जाते हैं। एक जगह क्रूर लोग सूअरनीके छोटे छोटे बच्चोंको चारों पैर बांधकर जिन्दे जिन्दा भट्ठीमे पका करके खाते थे। क्रूर लोग बैल भैंसा आदिको असह्य त्रास देकर उनसे पचास-पचास मनका बोझ खिंचवाते हैं और फिर शक्तिहीन हो जाने पर उसे काटनेके लिये कसाईके हाथ बेच देते हैं। अज्ञानभावमे ऐसी क्रूरता अनन्तवार जीवने की, और खुद भी पशु होकर ऐसे दुःख अनन्तवार भोग चुका। अरे, वर्तमानमे तो डाक्टरीकी पढाईके बहानेसे बन्दर आदि प्राणीको बेचारेको कितना सताते हैं। जीतेजी उसका शिर काटके दवाकी आजमाईश करते हैं, जीते मेंढ़कके चारों पैरोंमे कीले ठोंककर उसका पेट चीरते हैं, अरे! विद्याके नाम पर कितनी क्रूरता? यह तो सब अनार्यविद्या है। आर्यमानवमे ऐसी क्रूरता नहीं हो सकती। यहा कहते हैं कि छेदन-भेदन या भूख-प्यासके ऐसे दुःख अनन्तवार जीवने सहन किया, अतः अब ऐसा उपाय करना चाहिए कि फिर कभी ऐसे दुःख भोगना न पड़े, चार गतिके दुःखोंसे छूटकर आत्मा मोक्षसुख पावे।

योगसारमे कहा है कि—

चारगति दुःखसे डरो (तो) तज दो सब परभाव;
शुद्धातमचिन्तन करो लेलो शिवसुख लाभ।

कुत्तेके भवमे घर घर भटकते हुए भी पेट भर खानेका नहीं मिलता। कुत्ता आदि तिर्यंचोंको भूख बहुत होती है किन्तु बेचारेको पेट भर खानेका नहीं मिलता। घर घर भटके, कितनी बार तिरस्कार होवे और कितनी बार डंडेकी मार लगे, तब मुश्किलसे रोटीका

एकाध टुकड़ा कहीं मिल जाय, दुष्कालमें घास-पानीके विना गाय जैसे ढोर भूखसे छटपताते हो और उनकी आंखोंसे आंसू बह रहे हो, पासमें उनका मालिक ग्वाला भी गायके सहारे अपना शिर टेककर खड़ा हो और अपने भूखे ढोरकी दशा देखकर उसकी आंखोंसे भी आंसू उमड़ रहे हों। इसके उपरांत ढोरको रोगादि होते हैं, घावमे कीड़े पड़ जाते हैं, बहुत गरमी या ठंडी उन्हें सहन करनी पड़ती है, ऐसे अनेक प्रकारके दु.खोंसे वे अति पीड़ित होते हैं। अत. हे जीव! यदि ऐसे दु.खोंसे भयभीत हो करके तुम सुखको चाहते हो तो मुनिराजका यह उपदेश अंगीकार करके सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रका सेवन करो और मिथ्यात्वादिको छोड़ो।

तिर्यंचगतिके विशेष दुःख और अन्तमें कुमरण

तिर्यंचगतिमे एकेन्द्रियसे पंचेन्द्रिय तकके जीवोंके दु खका थोड़ासा वर्णन किया, बाकी कथनमे तो कितना आ सके ? कथनमे पूरा नहीं आ सकता, अत' उसका उपसहार करते हुए कहते है कि—

(गाथा-८)

वध बंधन आदिक दु.ख घने कोटि जीभतें जात न भने।
अति संक्लेश भावतें मर्यो घोर श्वभ्रसागरमें पर्यो ॥ ८ ॥

अरे, अज्ञान से पशुपर्याय मे वध-बंधन एवं अन्य बहुत प्रकार के जो दु ख जीव ने सहन किया उसका वर्णन कैसे किया जाय ?—करोड़ों जीभ से भी वह दु ख कहा नहीं जाता। यहाँ कुछ शारीरिक स्थूल दु खों का कथन किया, अन्य हजारों तरह के मानसिक दु खों की जो तीव्र पीड़ा है वह वचन से कैसे कही जाय ? ऐसे बहुत दु खों को भोग कर अन्त मे अत्यन्त संक्लेश भावपूर्वक कुमरण किया और पाप की तीव्रता के कारण नरक के घोर दु'खसागर मे जा पड़ा।

यद्यपि, सभी पंचेन्द्रिय तिर्यंच नरक मे ही जाय-ऐसा नहीं है, वे चार गति मे से किसी भी गति मे जाते है, परन्तु यहाँ

उनकी बात है कि जो तीव्र पापपरिणाम करके नरक में जाते हैं, क्योंकि जीव ने कैसा कैसा दुःख भोगा यह दिखलाना है। तिर्यंच के दुःखों के बाद अब नरक के दुःख दिखाते हैं। शास्त्रों में सुख का उत्कृष्ट स्वरूप दिखाया है और दुःख का भी उत्कृष्ट स्वरूप दिखाया है, उसे जानकर दुःख से छूटने का व सुख की प्राप्ति का उद्यम करना चाहिए। अज्ञान से संसार में जीव कितना दुःखी हो रहा है—उसका भी बहुत से जीवों को ख्याल नहीं है। स्वयं दुःखी है उसका भी ख्याल जिसे न हो वह जीव उस दुःख से छूटने का उपाय क्यों करेगा? दुःख से छूटने का जिनको विचार ही नहीं, सुखी होने की जिनको जिज्ञासा ही नहीं—ऐसे जीवों के लिये यह बात नहीं है। किन्तु जिनके हृदय में ऐसा प्रतिभास हो कि मैं बहुत दुःखी हूँ और उससे छूटना चाहता हूं,-ऐसे दुःख से छूटकर सुखी होने की पिपासा जिनके अन्तर में हुई हो ऐसे जीवों के लिये सन्तों का यह उपदेश है।

रे जीव! अज्ञान से दुःख भोगते हुए तूने संसार के कोई भी दुःख बाकी नहीं रखा। मैं कौन हूं? मेरा सच्चा रूप कैसा है? मैं दुःखी हूँ या सुखी? दुःखसे छूटनेके लिये व सुखी होनेके लिये मुझे क्या करना चाहिए? किसको छोड़ना व किसका ग्रहण करना?-इसकी पहचान के बिना, विवेक के बिना जीव संसार में दुःखी हो रहा है। श्रीमद् राजचन्द्रजी ने १६ वर्षकी उम्र में (गुजराती में) लिखा है कि—

"हुं कोण छुं? क्यांथी थयो? शुं स्वरूप छे मारूं खरूं?
कोना सम्बन्धे वलगणा छे? राखुं के ए परिहरूं?

एना विचार विवेकपूर्वक शांतभावे जो कर्या,
तो सर्व आत्मिकज्ञानना सिद्धान्ततत्त्वो अनुभव्या। ”

अरे, विचारशक्ति मिली तो भी जीव विचार ही नहीं करता और धधकती आग मे पकते हुए सकरकंदकी तरह वह दु खाग्नि मे सेका जा रहा है, दु खकी ज्वाला मे जल रहा है तो भी मूरखको दु ख नहीं दिखता। जरासा अपमानादि होने पर क्रोधकी ज्वाला भभक जाती है। अरे जीव ! यह तुझे शोभा नहीं देता। तू जाग जाग। धर्मके बिना तेरे जीवनका कोई मूल्य नहीं। कीड़ा, चींटी आदिके अनन्त अवतार मे तू धर्मके बिना ही मरा और वैसे ही यदि इस मनुष्य अवतार पाकरके भी धर्मके बिना जीवन पूरा हो जाये—तो मनुष्य होकर तूने क्या किया ? कीड़ेके अवतार मे और मनुष्यके अवतार मे कौन सा फर्क पड़ा ? भाई ! धर्मके बिना तेरा दु ख कभी मिटनेवाला नहीं।

धर्मके बिना सुख कैसे हो ? किसी भी तरह नहीं हो सकता। बिना धर्मके जीवको कैसे कैसे दु ख भोगने पड़ते हैं उसका यह कथन है। जैसे राम वगैरहका लम्बे समयका जीवन तीन घन्टेके नाटकमे दिखला देते हैं वैसे इस आतमरामके अनन्तकालके दु खोंकी लम्बी कथा शास्त्रकारोंने सक्षेपमे बता दी है। भाई ! तिर्यंचपने मे अज्ञानसे तुमने बहुत दु ख भोगे। कोई छुरेंसे काट डाले, भूखे-प्यासे बाध रखे, पिंजरे मे बन्द कर दे,—तिर्यंच अपने ऐसे दु ख किनसे जाकर कहें ? बड़ी मछली छोटी मछलीको खा जाती है, छोटा मच्छ ऐसा क्रूर विचार करता है कि यदि मैं बड़ा मुँह वाला होता तो इन सब मछलियों को खा लेता। ऐसे क्रूरभाव करके

कुमरण से मरके नरक में जा पडते हैं। नरक के घोर दु खों का कथन आगे करेंगे।

प्रश्न—ऐसे जो अनन्तदु ख जीव ने सहन किया वह अभी क्यों याद नहीं आता?

उत्तर—अभी जो दु'ख हो रहा है वह तो नजरों से दिख रहा है न! तो वैसे ही भूतकाल भी अज्ञानी रहकर दु ख मे ही जीवन विताया है। उसकी मूढ़ताके कारण उसे याद न आये इससे क्या? माता के उदर मे उल्टे मस्तक नव मास तक रहकर जो दुःख भोगा—उसकी भी याद नहीं आती, तो क्या वह दु.ख न था? भाई! सन्तों तुझे याद दिलाते हैं कि अज्ञान से अब तकके अनन्तकाल कैसे दु ख मे तूने विताये? चारगति मे कहीं भी रंचमात्र सुख तुझे न मिला। अरे, तेरी दु खकथा कितनी वैराग्यजनक है? वह सुनते वैराग्य आ जाये ऐसा है।

शास्त्र मे सुकुमार (सुकौमल) के वैराग्यप्रसंगका वर्णन आता है; उसकी माता यशोभद्रा से ज्योतिषो ने पहले से कह रखा था कि तेरा यह पुत्र किसी भी दिगम्बर मुनिराज को देखते ही अथवा उनके वचन सुनते ही वैरागी होकर दीक्षा धारण कर लेगा। इस कारण उसकी माता चिन्तित रहती हुई उसको महल मे ही रखती थी, उसे भय था कि कहीं कोई दिगम्बर मुनि उसके देखने मे न आ जाय, इस कारण वह कड़ी निगरानी रखती थी। उस यशोभद्रा का भाई, अर्थात् सुकुमार का मामा यशोभद्र मुनि हुआ था, उसने अवधिज्ञान से जाना कि सुकुमार की आयु अब थोड़े ही दिनों की

बाकी है। अत. वह उसको प्रतिबोधने के लिये उसके महल के पीछे के उद्यान मे 'त्रिलोकप्रज्ञप्ति' की स्वाध्याय करने लगा, उसमे तीन लोक का वर्णन था। उसमे से प्रथम नरक के दुःखों का वर्णन आया, अपने महल मे बैठे-बैठे सुकुमार वह सुन रहा था, सुनते ही इसके हृदय मे वैराग्यभावना उमड़ आई। उसके बाद मध्यलोक का वर्णन और फिर ऊर्ध्वलोक के अच्युतस्वर्ग का तथा वहा के देवों की विभूति आदिका वर्णन सुनकर सुकुमार को अपने पूर्वभवका स्मरण हो गया, और इन्द्रिय-सुखोंको असार जानकर ससार से उसका मन विरक्त हुआ। तुरन्त ही वह महल से गुपचुप उतरकर मुनिराज के पास चला गया और 'अब तुम्हारी तीन दिन की आयु शेष है'—मुनिराज से ऐसा सुनकर उसी वक्त वैराग्यपूर्वक दीक्षा लेकर मुनि हो गया। इस प्रकार नरकादि के दु खों के स्वरूप का विचार करने पर भी संसार से वैराग्य आ जाय—ऐसा है।

पूर्वका अनन्तकाल जीवने दु'खमे ही बिताया है, मोक्षसुख उसने कभी नहीं पाया। मोक्षसुख यदि एकबार भी पा ले तो फिर ससारमे अवतार नहीं होता। धर्मके आराधक जीवको कदाचित् रागके कारणसे एक दो अवतार हो भी जाय तो वह अवतार उत्तम ही होता है, हलका अवतार उसको नहीं होता। तिर्यंच-नरक जैसे हलके अवतारका आयुष्य मिथ्यादृष्टि ही बांधता है, सम्यग्-दृष्टि नहीं बांधता। किसी राजकुमारको जीतेजी लोहेके रस बनानेके भट्ठेमे फैंकने पर उसे जो दु ख हो ऐसा दु ख अज्ञानके कारणसे तिर्यंचगतिमे जीवने अनन्तबार भोगा है। या तो उसने स्वयं क्रूर पापी होकर दूसरोंको मारा इसलिये वह नरकमें गया अथवा दूसरोंने

क्रूरतासे उसको मारा तब तीव्र क्रोधादि संक्लेशसे मरकर वह नरकमे गया। नरक यानी दुःखका समुद्र, उसके दुःखका क्या कहना? एक जगह घातकी लोग भेड़के बच्चेके शरीरको धधकते लोहेकी तीलीसे पिरोकर आगमे सेकते थे। अरेरे कितनी क्रूरता! और भेड़को भी उस वक्त कितनी पीड़ा होती होगी? देहसे अतिरिक्त और तो कुछ निजस्वरूप उसको दिखता नहीं; अतः बारबार ऐसी पीड़ा भोगता हुआ अनन्तकालसे कुमरण करता आया है। अन्य जीव ऐसे दुःख भोगते हैं वैसे तुम भी अनन्तबार अज्ञानीपनमे ऐसे दुःख भोग चुके हो। अतः उससे बचनेके लिये सच्चा ज्ञान करो। ज्ञानीके तो आनन्दकी लहर है क्योंकि आत्माको देहसे भिन्न जान लिया है। देहको ही निजस्वरूप माननेवाले अज्ञानीको मृत्युका डर है कि देह चला जायगा तो मैं मर जाऊंगा। इस प्रकार जगतको मरणका भय है, ज्ञानीको तो आनन्दकी लहर है। जहां सुखका समुद्र अपनेमें ही उमड़ता हुआ देखा वहां दुःख कैसा? और कुमरण भी कैसा? और जहां देहसे भिन्न चैतन्यका भेदज्ञान नहीं है वहाँ पर दुःख और कुमरण ही है। वीतराग-विज्ञानरूप भेदज्ञानके विना समाधिमरण या सुख हो ही नहीं सकता। जीवने स्वयं अज्ञानसे कैसे भयानक दुःख सहन किये उसको यदि वह जाने और स्वभावके परम सुखको भी जाने तो अवश्य दुःखके कारणोंको छोड़कर वह सुखका उपाय करे, तब फिर उसे नरकादिके दुःख रहे नहीं, सादि-अनन्तकाल वह सुख-धाममें विराजित हो जाय। अरे जीव! दुःख तुम्हें नहीं भाता तब फिर उस दुःखके कारणरूप मिथ्यात्वादि भावको तुम क्यों नहीं

छोडते ? और सुख तुम्हें प्रिय है तो उस सुखके कारणरूप सम्यक्त्वादि भावको तुम क्यों नहीं सेते ? दु:ख तो किसको प्रिय लगे ?—किसीको भी नहीं, तो भी जीव जब तक दु:खके कारणका सेवन न छोड़े जब तक उसका दु:ख मिटता नहीं। स्वयं अपनेमें आनन्दका समुद्र भरा पड़ा है किन्तु जीव अपनी ओर देखता नहीं, इससे उसको अपना आनंद अनुभवमें नहीं आता और बाह्यदृष्टिसे वह दु:खी ही हो रहा है। उसने एकेन्द्रिय पर्यायसे लेकर पंचेन्द्रिय तककी तिर्यंचपर्यायोंमें कैसे कैसे दु:ख भोगे वह दिखाया, अब आगे नरक गतिके दु:खोंका कथन करेंगे।

नरकगतिके दुःखोंका वर्णन

संसारमें अनन्त जीव है, उस जीवको जो दु:ख है वह दिखाकर उस दु:खके नाशका उपाय दिखलाना चाहते हैं। पहले यह दिखलाते है कि दु:ख कैसा है और उसका कारण क्या है? चारगतिमे से तिर्यंचगतिका दु:ख दिखाया, अब चार गाथाओंके द्वारा नरकगतिके दु:खोंका कथन करते हैं:—

(गाथा ९ से १२)

तहां भूमि परसत दुःख इसो विच्छू सहस डसें नहिं तसो।
तहां राध-श्रोणितवाहिनी कृमिकुलकलित देहदाहिनी ॥ ९ ॥

प्रथम तो संसारमें एकेन्द्रियमेसे पंचेन्द्रिय होना कठिन है, और पंचेन्द्रिय हो करके भी जो तिर्यंच या मनुष्य तीव्र पाप करते हैं वे नरकमे जा गिरते हैं। नरकमे उत्पत्तिके स्थानरूप जो उलटे मुँहवाले बिल हैं उसमे उत्पन्न होकर वे नारकी जीव उलटे शिर नीचे पटकते हैं,—पटकते ही भाले जैसी कर्कश वहाकी जमीनके आघातसे महान कष्ट पाकर फिर एकदम उछलते हैं और फिर जमीन पर भाले या छुरे जैसे तीव्र शस्त्रोंके ऊपर गिरते है। बारबार ऐसा होनेसे उनका पूरा शरीर छिन्न-भिन्न हो जाता है और वे महादु:ख पाते हैं। नरकमें उपजते ही वे जीव ऐसी असह्य पीड़ाको भोगते हैं मानों दुःखके समुद्रमे ही गिरे। उनकी असह्य वेदना कैसे कही जाय? वहाकी पृथ्वी ही ऐसी है कि

जिसके स्पर्शन मात्रसे भी हजारों बिच्छुओंके काटने जैसी वेदना होती है। अत्यन्त जहरीला बिच्छू जिसके डंक लगते ही यहाके मनुष्य मर जाय ऐसे हजारों बिच्छुओंके एकसाथ डंक लगाने पर जो तीव्र पीडा हो उससे भी अधिक पीड़ा नरकमे जमीनके छूने मात्रसे होती है। जमीनको छूते ही मानों कोई काला नाग काट रहा हो ऐसी पीड़ा देहमे होती है। जहाकी जमीन ही इतनी कर्कश, तब वे कहा जाकर बैठे? नरककी भूमिमे दुर्गन्ध भी इतनी है कि यदि उसका एक छोटासा कण भी यहां रखा जाय तो उसकी दुर्गंधसे अनेक कोशके लोग मर जाय। वहां पर दुर्गंधमय रक्तपीपसे भरी हुई वैतरनी नदी (जो कि वास्तवमे नदी न होकर एक तरहकी विक्रिया है) उसको देखकर भ्रमसे पानी समझकर नारकी उसमे कूद पड़ता है परन्तु तब तो उसका दाह बहुत ही बढ़ जाता है, वह वैतरनी नदी अतिशय दाह करनेवाली है और ऐसी दुर्गंधवाली है-मानों सड़े हुए कीड़ोंसे ही भरी हो। नारकी आदिके द्वारा विक्रियासे दिखायी गई उस नदीमे जल समझकर, अपने देहकी ताप मिटानेकी आशासे जब वह नारकी उसमें उतरता है तब बडी तीव्र दाहसे दु खी होता है। नरकमे कीड़े-बिच्छू आदि विकलेन्द्रिय जीव नहीं होते एवं सर्पादिक तिर्यंच भी नहीं होते, परन्तु दूसरे नारकी आदि विक्रियाके द्वारा ऐसा रूप धारण करते हैं। किसीको तावेके धधकते रसमे फेंकने पर उसे जो दु'ख हो उससे अधिक दुःख वैतरनीमे पड़ने वाले नारकी जीवको होता है। अज्ञानी लोगोंमे ऐसी कल्पना है कि जिसने यहा पर गायका दान दिया होगा वह नरकमे उस गायकी पूंछ

पकड़ करके वैतरनी नदीको पार करेगा,-परन्तु वह तो बिलकुल भ्रम है। जो गाय यहां दी गई वह नरकमे कैसे पहुंच गई? तथा उस गायका दान देनेवाला नरकमे जाये और वहा पर गायकी पूंछ पकड़कर वैतरनीको पार करे,—यह, कैसी बात? उससे अच्छा तो यह है कि—नरकमे जाना ही न पड़े ऐसा उपाय करना। आत्माका ज्ञान करनेसे नरकगतिके मूलका छेद हो जाता है, अत आत्मज्ञानका उपाय करना चाहिए।

मांस-मच्छी-अण्डे खानेवाले तथा शिकार वगैरह महा पाप करनेवाले पापी जीव मरकर नरकमे जाते हैं और तीव्र दु ख भोगते हैं। इतना तीव्र दु'ख है कि वे जीव मर करके भी उससे छूटना चाहते है परन्तु आयुस्थिति पूर्ण होनेके पहले वे छूट नहीं सकते। अपने अशुभ भावोंसे जो पापस्थिति बांधी उसका फल वे भोग रहे हैं। उनके शरीरके लाखों टुकड़े होकर इधर-उधर बिखर जाने पर भी वे मरते नहीं, पारेकी तरह उनका शरीर फिर इकट्ठा हो जाता है। नरकके ऐसे तीव्र दु खोंका कारण मिथ्यात्व है—एसा जानकर उसका सेवन छोड़ो, और सुखका कारण सम्यक्त्वादि है—ऐसा जानकर उसका सेवन करो।

आत्मा अनादि अनन्त है, उसका अब तकका काल कैसी दशा में बीता? उसका मोक्ष तो हुआ नहीं, यदि मोक्ष हुआ होता तो वह सिद्धालय मे अपने परम आनन्द में सदैव विराजमान रहता और फिर ऐसा अवतार या दु ख उसको न होता। मोक्ष को पानेवाला आत्मा संसार मे फिर अवतार धारण नहीं करता। अतएव जीव ने

अब तक संसारकी चार गतियों के दुःख भोगने मे ही काल खोया है। कैसे-कैसे स्थानों में (कैसी कैसी पर्यायों मे) उसने दुःख भोगा–इसकी यह कहानी है।

इस पृथ्वी के नीचे नरक के सात स्थान है, उसमे असंख्य जीव अपने पापों के फलरूप घोर दुःख भोग रहे हैं। यह कोई कल्पना नहीं अपितु सत्य है, सर्वज्ञ भगवानका देखा हुआ है। लाखों-करोडों जीवोंका संहार करने का जो क्रूर-निर्दय-घातकी परिणाम उसका पूरा फल भोगने का स्थान इस मनुष्यलोक में नहीं है, यहां तो अधिक से अधिक एकवार उसे मृत्युदण्ड दिया जा सकता है, अरे, सैंकडों लोगों को गोली से उड़ा देनेवाला क्रूर डाकू पकडा भी नहीं जाता, शायद कभी पकडा भी जाये तो न्याय के द्वारा उसका गुनाह साबित न हो सकनेसे वह बेगुनाह छूट जाता है, तो क्या उसके पापोका फल उसको नहीं मिलेगा? अरे, उसके पापोंके फल मे वह नरक मे अरबों-असंख्य वर्षो तक महा दुःख पावेगा। जगत मे पुण्य व पाप करनेवाले जीव है, उसीप्रकार उसके फलरूप स्वर्ग व नरक के स्थान भी हैं।

कितने ही जीव स्थूलबुद्धि से ऐसा मानते हैं कि यहां पर दुर्गन्धयुक्त विष्टा आदि में जो कीड़े उत्पन्न होते है वही नरक है, इसके सिवाय दूसरा कोई नरक नहीं है—ऐसा वे कहते हैं, परन्तु उनकी यह बात सच्ची नहीं है। इस पृथ्वी के नीचे सात नरकों के स्थान मौजूद हैं और उनमे असंख्यात जीव नारकीरूप से अभी भी महान कष्ट भोग रहे है। ये नारकी जीव तो पंचेन्द्रिय हैं जब

कि विष्टा के कीडे वगैरह तो विकलेन्द्रिय तिर्यंच हैं, वे नारकी नहीं हैं। वे विष्टा के कीड़े आदि जीव तो नारकी से भी कहीं अधिक दुखी हैं, यद्यपि उनको बाहर मे प्रतिकूल संयोग कम दिखने में आता है परन्तु अन्दर मे दुख की तीव्रता से वे मूर्छित हो गये हैं, इस कारण संयोगदृष्टि से देखने वालों को उनके दुख की तीव्रता नहीं दिखती। नारकी तो पंचेन्द्रिय हैं, उनमे तो उपदेश सुनने की भी योग्यता है और वे उसका ग्रहण भी कर सकते हैं कोई-कोई जीव तो वहां सम्यग्दर्शन भी पा लेते हैं। सातवीं करक मे भी असंख्यात जीव (वहां जाने के बाद मे) सम्यग्दर्शन पा चुके है। जब विष्टा के कीडे आदि तो दोइन्द्रियवाले ही हैं, वे अपनी चेतना शक्तिको अत्यन्त हार बैठे हैं, उनका ज्ञान इतना हीन हो गया है कि 'तुम आत्मा हो' ऐसा शब्द सुननेकी भी शक्ति उनमे नहीं रही, उपदेश ग्रहण करनेकी शक्ति ही वे खो बैठे हैं, ज्ञानचेतनाको खोकर बेहोशपनमे वे बहुत ही दुख वेद रहे हैं। उनको इतना दुःख है कि किसी भी तरहके प्रतिकूलसंयोगसे भी जिसका माप नहीं हो सकता। अकेली बाह्य सामग्रीके द्वारा न तो धर्मका माप निकल सकता है, न दुखका भी।

आत्माका स्वभाव अनन्त आनन्दमय है, उस आनन्दस्वभावकी विराधना करके जीव जितनी विपरीतता करता है उतना ही अनन्त दुख वह भोगता है। आनन्दस्वभावकी आराधना करनेसे सिद्ध भगवन्त अनन्त सुखको भोग रहे हैं, और उसकी विराधना करके रागमें सुख माननेवाले मिथ्यादृष्टि जीव संसारमे अनन्त दुख भोग

रहे हैं। जब कि रागका कोई शुभ विकल्प उठे वह भी चैतन्यके आनन्दसे विरुद्ध है—दु खदायक है, तब फिर देहबुद्धिसे तीव्रहिंसादि पापोंके करनेवालेके दु खका तो कहना ही क्या? मांस-भक्षण, शिकार-शराबी आदि तीव्र महापाप करनेवाले जीव नरकमे जाते हैं, अभी उसका मृतदेह तो यहाँ मुलायम गद्देमे पड़ा हो और उधर वह पाप करनेवाला जीव नरकमे उत्पन्न हो करके वहां हजारों विच्छूओंके डकसे भी अधिक दु ख भोग रहा हो, उसके शरीरके खंड खंड हो जाते हो। जीवने पूर्वकालमे जितनी पापरूपी कीमत भरी है उतना दु:ख नरकमे वह भोगता है। ऐसे नरकादिके दु ख हरएक जीव अनन्तवार भोग चुका है। उससे छूटनेका अब यह मौका है। दु खोंका यह वर्णन इसलिये किया जाता है कि उनके कारणरूप मिथ्यात्वादि भावोंको जीव छोड़ दे और सुखके उपायमे वह लगे।

❀ ❀ ❀

भीषण णरयगईए तिरियगईए कुदेवमणुगइए।
पत्तोसि तिव्वदुःक्खं भावहि जिणभावणा जीव ॥ ८ ॥

हे जीव। तैं भीषण भयकारी नरकगति तथा तिर्यंचगति बहुरि कुदेव कुमनुष्यगतिविषैं तीव्र दुख पाये तातैं अब तू जिनभावना कहिये शुद्ध-आत्मतत्त्वकी भावना भाय, ताते तेरे ससारका भ्रमण मिटे।

नारकीओंके दुःखोंका विशेष कथन

(गाथा—१०)

सेमरतरु दलजुत असिपत्र असि ज्यों देह विदारैं तत्र ।
मेरु समान लोह गली जाय ऐसी शीत-उष्णता थाय ॥ १० ॥

नरकभूमिमें सेमरके वृक्ष ऐसे होते हैं कि जिनके पत्ते तलवारकी तीक्ष्ण धार जैसे होते है। उस वृक्षके नीचे थोड़ासा विश्राम लेनेकी आशासे जब नारकी जीव जाते है कि तुरन्त ही ऊपरसे सेमरवृक्षके नोकदार पत्ते गिरकर उनके शरीरको वेध डालते हैं, और उस वृक्षके फूल भी २५-५० मनके तोपके गोलेकी तरह उनके ऊपर पकड़कर उनको कुचल डालते है। वे जहा-कहीं भी सुखकी आशासे जाते है वहां सर्वत्र महान दु'ख ही पाते हैं। यहां पर किसीको अचानक दु ख आने पर "भोंमाथी भाला उग्या" (पृथ्वीमेंसे भाले निकले) ऐसा कहा जाता है, किन्तु नारकीओंको तो वास्तवमें ही ऐसा है, वहांकी पृथ्वी एवं वृक्ष भी उन जीवोंको भालेकी तरह वेध डालते हैं और वहा ठंडी-गरमी इतनी तीव्र है कि मेरुपर्वत जितना लाख योजनका लोहेका गोला ऊपरसे नीचे गिरते-गिरते बीचमें ही पिघल जाय। अग्निमे जैसे घी पिघल जाय वैसे वहांकी तीव्र उष्णतामे लोहेका लाख मनका गोला भी पिघल जाता है, मात्र उष्णतासे नहीं—अपितु वहांकी ठण्डसे भी लोहेका गोला गलित हो जाता है, जैसे हीम (वर्फ) के पड़नेसे वनस्पतियां

दग्ध हो जाती हैं वैसे नरककी ठण्डसे लोहगोला भी गलकर छिन्न-भिन्न हो जाता है। नरकमे ऐसी ठण्डी-गरमी कमसे कम दश-हजारसे लेकर असख्य वर्षो तक उन जीवोंको सहन करनी पडती है।

प्रारम्भके चार नरक तककी भूमि गरम है, पांचवीं नरकके अमुक भागोंमे ठण्ड है, छट्ठी एवं सातवीं नरककी भूमि ठण्डी है। पहली नरकमें आयुस्थिति कमसे कम दस हजार वर्ष है, इसके ऊपर एक समय, दो समय, ऐसे बढते बढते अन्तमे सातवीं नरकमे उत्कृष्ट आयुस्थिति तेंतीस सागरोपमकी है। इसप्रकार दस हजार वर्षसे लेकर ३३ सागरोपम तकके जो असंख्य भंग, उनमेसे प्रत्येकमे अनन्तवार जीव उत्पन्न हो चुका है। अरे, अनन्तकालके दीर्घ भवभ्रमणमे जीवने कुछ बाकी नहीं रखा। भाई, तेरे दु खकी दीर्घता भी तुझे मालूम नहीं यदि अपने दु'खकी दीर्घताका ख्याल आये तो जीव उससे छूटनेका उपाय करे। अनादि अनन्त टिकनेवाला जीव, उसका अनादिसे अब तकका दीर्घकाल संसारके दु.खमें ही बीता। जब आत्मज्ञान करके सिद्धपदको साधेगा तब उस सादिअनन्त सिद्धपदका काल संसारसे अनन्तगुना है। ऐसे सिद्धपदके महान सुखकी प्राप्ति और संसार दु खका अन्त वीतरागविज्ञानके द्वारा ही होता है, अत वीतरागविज्ञान मंगल है।

नरकमे स्पर्श-रस-गन्ध ये सभी प्रतिकूल है, वहां क्षणमात्र भी साता नहीं है। हजारों-लाखों वर्ष तक जिसने नरककी शीत-उष्णताका दु ख सहन किया, भाले जैसी भूमिमे जो दीर्घकाल तक

रहा, वहीका वही यह जीव है, किन्तु उन सबको वह भूल गया। अभी तो एक छोटा सा कांटा चुभने पर भी वह सहन नहीं करता। देहकी सुविधाके पीछे आत्माको बिलकुल भूल रहा है। अब भी आत्माका ज्ञान जो नहीं करेगा उसको चारों गतिके जैसेके वैसे दुःख फिर भोगना पड़ेगा। अतः हे बन्धु! इस मनुष्य अवतारमे आत्माकी दरकार करना। अनेक जीवोंको नरकके दुःखोंका वर्णन सुनकर वैराग्य हुआ और दीक्षा लेकर वे मुनि हो गये, उन्होंने आत्माके आनन्दमे लीन होकर के दुःखका अभाव किया।

यहां थोड़ी सी प्रतिकूलता आने पर भी कैसा व्याकुल हो जाता है? किन्तु नरककी प्रतिकूलताके आगे यहांकी प्रतिकूलता तो न कुछ है। अरे, नरककी उस अनन्तदुःख-वेदनाके बीचमे असंख्य वर्ष जीवने कैसे बिताया होगा? असंख्य वर्षों तक उस अनन्ती वेदनाको भोगता हुआ भी जीव जिन्दा ही रहा, जीव मर नहीं गया; इतना ही नहीं अपितु उस वेदनाके बीचसे भी अंतर-स्वभावके सन्मुख होकर असंख्य जीवोंने सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया। अरे भाई! जरा सोचो तो सही, संसारदुःखसे तुम्हारा उद्धार करनेके लिये वीतरागी सन्त तुमको यह उपदेश दे रहे है।

क्या तुम दुःखको चाहते हो?—नहीं, तो उसके कारणरूप मिथ्यात्वादि भावोंको छोड़ देना चाहिए। वह मिथ्यात्वादि भाव कैसे छूटे—उसका उपाय तीसरी ढालमें कहेंगे। यहां छेदन-भेदन भूख-प्यास आदि प्रतिकूल संयोगके द्वारा नरकके दुःखका कथन करके तीव्र पापका फल दिखाया है, ऐसा पाप मिथ्यादृष्टि जीव

ही बांधते हैं। नरकके योग्य पाप सम्यग्दृष्टि जीव कभी नहीं बांधते। हे जीव! जब तू ऐसा सम्यक्त्वादि भाव प्रगट करेगा तभी दुःखोंसे तेरा छुटकारा होगा। तेरे अज्ञानसे तुझे जो कष्ट हुआ, भगवान तुझे उसकी याद दिलाते हैं, अतः अब उससे छूटनेका उपाय कर, तेरे हितके लिये वीतरागविज्ञानका यह उपदेश ध्यान देकर सुन।

नरकके जीवोंको तीव्र असाता रहती है, परन्तु जब मनुष्य-लोकमें तीर्थंकर भगवानका कल्याणक होता है तब उन नारकी जीवोंको भी दो घड़ीके लिये साता हो जाती है, उस वक्त विचार करने पर किसीको ऐसा ख्याल आ जाता है कि अहो! मध्यलोकमे कहीं देवाधिदेव तीर्थंकरका अवतार हुआ है, उन्हींके प्रभावसे हमे यहां नरकमे भी साता हो रही है। इस प्रकारके विचारसे तीर्थंकर की महिमा लक्षमे लेकर कोई-कोई जीव अन्तरमे अपने स्वभावमे घुस जाते हैं और सम्यग्दर्शन प्रगट कर लेते हैं। प्रत्येक नरकमे असंख्यात सम्यग्दृष्टि जीव हैं, और उनसे असंख्यात गुने मिथ्यादृष्टि भी हैं।

वीतरागी देव-गुरु-धर्मकी निंदा करनेवाला, अनादर करनेवाला तथा तीव्र हिंसादि पाप करनेवाला जीव अपने पापका फल भोगनेके लिये नरकमे जाकर औंधे शिर पटकते हैं। अरे, वहांके दुःखका क्या कहना? वहाकी भूमि दुःखदायक, वहांकी नदी दुःखदायक, वहाकी हवा दुःखदायक वहांके ऋतुकी तीव्र शीत-उष्णता दुःखदायक, वहांके जीव भी परस्पर एक दूसरेको दुःख देनेवाले, वहा न खानेका अन्न मिले,

न पीनेका पानी;—इसप्रकार बाहरमे सर्वत्र प्रतिकूलता घेरा है और अन्दरमे वह जीव अपने तीव्र संक्लेश भावोंके कारण दुःखी है।

नरकमे गरमी भी असह्य और ठंड भी ऐसी कि जिसमे लोहपिंड पिघल जाय,—जैसे कि सख्त वर्फ (हिमराशि)की वर्षासे वनस्पतियाँ दग्ध हो जाती हैं। इस बातका दृष्टान्त लेकर 'कल्याण-मन्दिर' स्तोत्रमे श्री कुमुदचन्द्रस्वामी कहते है कि—

—हे प्रभो! हे वीतराग जिन! क्रोधको तो आपने पहलेसे ही नष्ट कर डाला था, तब फिर क्रोधाग्निके बिना आपने कर्मको कैसे दग्ध किया? सामान्य लोग किसीका नाश करनेके लिये उसके ऊपर क्रोध करते हैं, किसीको भस्म करनेके लिये अग्निकी जरूरत रहती है, परन्तु हे प्रभो! आश्चर्य है कि आपने तो बिना ही क्रोध किये कर्मोंका नाश कर दिया, क्रोधाग्निके बिना ही आपने कर्मोंको जला दिया। सचमुचमे भगवानने शान्त-वीतरागपरिणामोंके द्वारा कर्मोंको भस्म कर दिया। जैसे हिमराशि ठंडा होने पर भी हरे वृक्षोंके वनको जला देता है वैसे क्रोधरहित वीतरागी शांतपरिणाम वाले होते हुए भी भगवानने कर्मोंको नष्ट कर दिया।

देखो, इस तरहसे भगवानकी स्तुति की है और साथमे यह भी दिखाया है कि वीतरागभावसे ही कर्मोंका नाश होता है तथा कोई कुदेवता अपने शत्रुके ऊपर क्रोध करके तीसरे लोचनके द्वारा उसको भस्म करता है—ऐसा कई मानते हैं परन्तु ऐसी बातका संभव वीतराग मार्गमें नहीं हो सकता—यह भी इसमें आ गया। वीतरागमार्गी सन्तोंके द्वारा की गई स्तुति गंभीर भावोंसे भरी

हुई होती है। यहां पर यह कहना है कि जैसे भगवानने शान्त परिणामके द्वारा भी कर्मोको नष्ट कर दिया, वैसे नरकमें शीत भी इतनी उत्कृष्ट है कि जिसकी ठंडसे मेरु जितना लोहेका गोला भी पिघल जाता है। 'त्रिलोकप्रज्ञप्ति' के दूसरे अध्यायमे यह बात दिखायी है। ऐसी तीव्र शीत-उष्णताका दु ख, छेदन-भेदनका दु'ख अनन्तवार जीवने भोगा, इसके उपरान्त अन्य कैसे-कैसे दुःख नरकमे भोगा यह आगेकी गाथामे कहते हैं।

नरकगतिके दुःखोंका विशेष कथन

(गाथा-११)

तिलतिल करें देहके खंड असुर भिड़ावें दुष्ट प्रचण्ड।
सिंधुनीरतें प्यास न जाय तोपण एक न बूंद लहाय ॥ ११ ॥

सेमरवृक्षके पत्तोंके समशेर जैसे प्रहारोंसे नारकीओंके शरीर छिद जाते हैं, तदुपरान्त नारकी जीव परस्पर लडते हुए एक दूसरेके शरीरका तिलतिल जैसा खंड कर डालते हैं। नारकीका शरीर ऐसा वैक्रियिक होता है कि उसके लाखों टुकड़े होकर यहां वहां बिखर जाने पर भी वह मरता नहीं, उसका शरीर फिर इकट्ठा हो जाता है। उस नारकीको इतनी तीव्र प्यास लगती है कि वह पूरे समुद्रका जल पीना चाहता है, परन्तु पीनेके लिये उसे पानीकी एक बून्द भी नहीं मिलती, इतना ही नहीं अपितु परमाधर्मी असुर उसका गला फाड़ कर उसमे तांबेका धधकता रस रेडते हैं। दुष्ट परिणामवाले हलके असुर देव कुतूहलके लिये वहां जाकर नारकीओंको आपसमे लड़ानेके लिये क्रूरतासे एक दूसरेसे भिड़ाते हैं, परस्परका पूर्व वैर याद कराके उन्हें आपसमे लड़ाते हैं। नारकी जीव भी क्रूरपरिणामवाले होनेसे कुत्तेकी तरह एक दूसरेसे लड़ते ही रहते हैं। नारकीमे स्त्री-पुरुष नहीं होते, सभी नपुंसक ही होते है। काम-क्रोधादिसे वे सदैव अत्यन्त संतप्त रहा करते हैं, उन्हें असाताका भी तीव्र उदय होता है, सभी तरहसे वे दुःखी ही दुःखी हैं।

करोड़ों-अरबों या असख्य वर्षोकी आयु तक उन्हें न तो पानीकी बून्द पीनेको मिलती है और न अनाजका कण खानेको मिलता है। है। सभी नारकी जीवोंको कुअवधिज्ञान होता है, परन्तु मिथ्यादृष्टि नारकीओंके लिये वह कुअवधिज्ञान भी संक्लेशका ही कारण बनता है। (वहा जो जीव सम्यग्दृष्टि होते हैं उनको सुअवधिज्ञान होता है।)

क्षणभरके लिये भी जहा सुख नहीं, साता नहीं ऐसी नरकके दु:ख धर्मके बिना अनन्तबार जीवने भोगे। अरे! जीव स्वयं ज्ञानका व सुखका सागर है परन्तु वह स्वयं अपनेको भूलकर अज्ञानसे दु:खके सागरमे डूब रहा है। नारकी जीव तीव्र दु:खकी वेदनासे चीख-चीखकर पुकार करता है, परन्तु कौन सुने उसकी पुकार? वहा उसकी पुकार सुननेवाला कोई नहीं। असुरदेव उसके पापोंकी याद दिलाकर उसे कहते हैं कि—तुझे मनुष्य पर्यायमें मांस बहुत भाता था न!—तो ले, यह खा! ऐसा कहके उसके ही शरीरमेंसे टुकड़ा काटकर उसके मुंहमे खिलाते हैं, और तुझे मदिरा-पानका बहुत शौक था न! तो ले, यह पी! ऐसा कहकर संडासे उसका मुंह खोलकर उसमे सीसेका उबलता रस डालते हैं। ऐसे उसके पापोंकी याद दे-देकर अनेक तरहसे महान दु:ख देते हैं। पूर्वमे तूने दूसरोंको काटा था—ऐसा कहकर उसके शरीरको करोंतसे चीरते हैं। नरकके दु:ख कहां तक कहा जाय? ऐसे-ऐसे दु:खोंके सागरके सामने सुखका सागर भी आत्माके अन्तरमे भरा पड़ा है। वहां कोई कोई जीव नरककी घोर दु:ख-

वेदनासे ग्रस्त होकर ऐसा विचार करते हैं कि अरे, यह कैसा दुःख? यह आत्माका स्वरूप नहीं हो सकता, इस दुःखसे बचनेका कोई स्थान जरूर होना चाहिए। इस प्रकारसे विचार करते हुए अन्तरकी गहराईमे जाकर, शान्तिका धाम ऐसा अपना चैतन्यस्वरूप लक्षमे ले लेते हैं और सम्यग्दर्शन पा जाते हैं।

—क्या नरकमे भी सम्यग्दर्शन हो सकता है?

हां भाई! वहां भी तो आत्मा है न? आत्मा अपने स्वभावमे अन्तर्मुख होकर वहां भी सम्यग्दर्शन पा सकता है, नरकमे भी सम्यग्दर्शन पाकर वह जीव दुःखके खारे समुद्रके बीचमे शांतिका मीठा झरना प्राप्त कर लेता है। भाई! तुम तो मनुष्य हो। यहां तुम्हें तो नरककी प्रतिकूलताका लाखवां भाग भी नहीं है, अतः प्रतिकूलताका बहाना छोडकर इस अवसरमे धर्म प्राप्तिका उद्यम करो। क्योंकि धर्मको भूलकर कुदेव-कुगुरु-कुधर्मका सेवन करनेसे या सच्चे देव-गुरु-धर्मके प्रति अविनय करनेसे जीव नरकादिके घोर दुःख समुद्रमे गिरता है, उसमेसे उसका उद्धार करनेवाला एक मात्र वीतराग धर्म ही है, अतः ऐसे धर्मका सेवन करो, वीतराग-विज्ञान प्रगट करो।

भाई! तुमने अज्ञानसे पाप तो अनन्तवार किया और उसका बुरा फल भी अनन्तवार भोगा, परन्तु अब तो तुम अपने चैतन्य-गुणको पहचानके आनन्द रसको चाखो। मिथ्यात्वके जहरका तो स्वाद अब तक लिया, अब तो चैतन्यके अमृतरसका स्वाद लो। अपने अनन्त सुखस्वभावको भूलकर अनन्तानुबन्धी मिथ्यात्वादि

भावोंके सेवनसे नरकमे गया, अत' अनन्त स्वभावके अनादरका दु'ख भी अनन्त है। अनन्तसुखसे भरपूर स्वभावका आदर उसका फल अनन्त सुख, अनन्त सुखस्वभावका अनादर उसका फल अनन्त-दु'ख।—इसमे किसीकी कोई सिफारिश नहीं चलती-जिससे कि जीवको अपने किये हुए पापोंका फल भोगना न पड़े। हाँ, धर्मके सेवनसे पापका जरूर नाश हो जाता है। सम्यक्त्वके सेवनसे एक क्षणमे अनन्त पापोंका नाश हो जाता है। यह दुःखमय संसार परिभ्रमणमे ऐसे धर्मकी प्राप्ति जीवको परम दुर्लभ है। किन्तु जिसको दु'खसे छुटकारा पाना हो उसको यह धर्म प्रगट करना यही एक उपाय है। धर्मके सिवाय दूसरा कोई भी दु खमेसे छुड़ानेवाला नहीं है। अत हे बन्धु! तुम सर्वज्ञके धर्मको ही शरणरूप समझकर परम भक्तिसे इसकी आराधना करो! इस धर्मके सेवनसे ही तुम्हारा दु'ख मिटेगा और तुम सुखी होओगे।

सर्वज्ञकथित धर्मको जो नहीं मानता और कुधर्मके सेवनको नहीं छोड़ता वह जीव संसाररूपी घोर दु खके समुद्रमेसे कैसे निकलेगा? जीवने संसारके निष्प्रयोजन पदार्थोंकी परीक्षा की परन्तु अपने हित-अहितका विवेक न किया। यदि सुदेव-सुगुरु-सुधर्मको और कुदेव-कुगुरु-कुधर्मको परीक्षापूर्वक पहचाने तो सत्यको उपासना करके वह सम्यग्दर्शन प्राप्त करे और तब उसका दुःख मिटे।

भाई, यह तेरी कथा है, नरकादि दु'खोंसे छूटनेके लिये और मोक्षसुख पानेके लिये तुझे यह कथा सुनायी जाती है। असंख्य योजनोंमे जिसका विस्तार है और जिसके जलका स्वाद मधुर

है—ऐसे स्वयंभूरमण समुद्रका सब जल मैं पी लूं तो भी मेरी तृषा नहीं छिपेगी—इतनी तीव्र तृषा नारकीओंको है, किन्तु पीनेके लिये जलकी एक बून्द भी उन्हें नहीं मिलती, असह्य तृषासे वे सदैव पीड़ित रहते हैं। चैतन्यके शांतरसके बिना जीवकी तृषा कैसे मिट सकती है? जब अवसर मिला था उस वक्त चैतन्यके शांतरसका पान नहीं किया और उसके विपरीत क्रोधादि कषायअग्निका सेवन किया, ऐसा जीव बाह्यमे भी तीव्र तृषामे जल रहा है। मुनिराज तो चैतन्यके निर्विकल्प उपशमरसमे ऐसे लीन होते हैं कि पानी पीनेकी वृत्ति भी नहीं रहती, आत्म-शांतिसे तृप्ति हो जाती है। यहा तो कोई बीमार पड़ा हो, पानी मांगे और आने मे जरासी देर हो जाये तब क्रोधसे अन्धाधुंध होकर कहने लगता है कि 'अरे, सब कहा मर गये? क्यों कोई पानी नहीं लाता?' परन्तु भाई! जरासा धैर्य रखना तो सीख। उस नरकमें कौन था तुझे पानी पिलाने वाला? वहाँ तो पानीका नाम लेने पर भी तेरे मुंहमे धधगता ताम्ररस डाला जाता था—जिससे मुंह भी जल जाता था। क्या यह सब दु:खको तू भूल गया? थोड़ीसी भी प्रतिकूलता सहन करनेका तुझे नहीं आता तब फिर देहबुद्धिको तू कैसे छोड़ेगा और देहबुद्धिको छोड़े बिना कैसे मिटेगा तेरा दु:ख? अनंत दु:ख तूने देहबुद्धिके कारणसे ही भोगे; अत: अब देहसे भिन्न आत्माकी पहचान करना चाहिए।

नारकी जीव मार काट करके एक दूसरेको बहुत दु:ख देते हैं। अरे, यहां मनुष्यमें भी कैसी क्रूरता देखनेमे आती है वैरवृत्तिसे

एक दूसरेको गोलीसे उड़ा देते हैं, छुरोंसे मार डालते हैं। एक आदमीको दूसरे आदमीसे वैर था, परन्तु वह उसको कुछ इजा न कर सका तब खेतमें जाकर उसके चार बड़े-बड़े बैलोंके पैर कुल्हाडेसे काट डाले। अरे, कितना वैरभाव! कितनी क्रूरता? ऐसे जीव नरकमे जाकर वहां भी वैरबुद्धिसे एक दूसरेको क्रूरतासे मारते रहते हैं, इस प्रकार दीर्घकाल तक जीव महा दुःख भोगता है। कठिनतासे जब उसमेसे बाहर आया तब सब भूल करके फिर पाप करने लगा और पाप करके फिर असंख्य वर्ष तक नरकमे जा पड़ा। कोई जीव ऐसा भी होता है कि असंख्यवर्षोंके बाद नरकमेसे निकलकर बीचमें मात्र अन्तर्मुहूर्तके लिये दूसरा भव कर ले, ऐसे अन्तर्मुहूर्तके ही अन्तरसे फिर नरकमे जाय और असंख्यवर्ष तक वहांके दुःख भोगे। मात्र अन्तर्मुहूर्तके लिये बाहर आया इतनेमे तो ऐसा तीव्र संक्लेश परिणाम किया कि जिसके फलमे फिरसे नरकमे जा पड़ा। देखो तो सही जीवके परिणामकी ताकत! उल्टे परिणामोंसे वह अन्तर्मुहूर्तमे सातवीं नरक पहुंच जाये और सुलटे (शुद्ध) परिणामोंसे अन्तर्मुहूर्तमे वह मोक्षको भी साध ले, ऐसी उसकी ताकत है। कोई जीव नरकमेंसे निकलकर बीचमें एक भव करे और फिर नरकमे जाये, वहांसे निकलकर बीचमे दूसरा एक भव करके फिर पीछा नरकमे जाये, इस तरह (बीचमे एक एक दूसरा भव करता हुआ) लगातार आठबार नरकमे जाता है और महान दुःख पाता है। एकेन्द्रिय जीवोंके तो उससे भी अनन्तगुना दुःख है—जिसको व्यक्त करनेका साधन (भाषा वगैरह) भी उनके पास नहीं है, अपनी चेतनाको ही वे खो बैठे

हैं। नारकीके शरीरको कूट-कूटके तिल-तिल जैसे टुकड़े करके छिन्न-भिन्न कर देते हैं; क्योंकि जिसने अखण्ड आत्माकी एकताको मिथ्यात्वादि पापोंके द्वारा खंड खंड कर दी उसको नरकमे शरीर भी ऐसा मिला कि जिसका खंड खंड हो जाय। उसका शरीर खंडित होकर फिर जुड़ जाय, तो भी वह मरता नहीं और महान दु:ख भोगता है। सिद्धभगवान आत्मामे एकत्वके द्वारा अखंड आनन्दको भोगते हैं, जब कि ये नारकी जीव देहमे एकत्वबुद्धिसे शरीरके खंड-खंड द्वारा अनन्त दु:ख भोगते हैं। अनन्तगुणकी आराधनाका सुख अनन्त और अनन्त गुणकी विराधना दु:ख भी अनन्त है। सिद्धभगवन्तोंका आनन्द अनन्त है और वैसाका वैसा अनन्तकाल तक रहता है, अज्ञानसे अपने ऐसे सुखस्वभावको भूलकर जीवने अनन्त दु:ख अनन्तकाल तक पूर्वमे भोगा। अपने अनन्त स्वभावको चूककर परमे सुख मानकर जिसने सामग्रीमें अनन्त अभिलाषाकी वह जीव अनन्त प्रतिकूलताका दु:ख भोगता है, कदाचित् कोई जीवको बाह्यमे प्रतिकूलता न हो तो भी अन्दरमे मोहसे वह महान दु:खी है। बाहरकी प्रतिकूलता तो मात्र निमित्त है, जीवको वास्तविक दु:ख तो अपने मिथ्यात्वादि मोह भावका ही है। निर्मोही जीव सदैव सुखी है। अपने मोह भावसे ही तुम दु:खी हो रहे हो अत हे भाई! उस मोहको तुम छोडो और आत्माका ज्ञान करो।

आत्माके ज्ञानके विना नरकमे जीवने जो दु:ख भोगा उसमें तृपाका दु:ख कैसा है यह इस गाथामे दिखाया; अब आगेकी गाथा मे भूखका दु:ख कैसा है यह कहेंगे।

नरकके दुःखोंका वर्णन (चालु)

अज्ञानसे पाप करके नरकमे जानेवाला जीव वहां जो दुःख पाता है उसका यह वर्णन चल रहा है—

(गाथा–१२)

तीनलोकको नाज जु खाय मिटे न भूख कण ना लहाय।
ये दुःख बहुसागर लों सहे, करम जोगतें नरगति लहे ॥ १२ ॥

'मानो तीनलोकका अनाज खा लूं तो भी मेरी क्षुधा नहीं मिटेगी'—इतनी तीव्र भूख नारकीको होती है परन्तु खानेका एक कण भी उनको नहीं मिलता, महान क्षुधासे वे पीडित रहते हैं। इसप्रकार नरकमे भूमि संबंधी दुःख, वैतरनी नदी सम्बन्धी दुःख, सेमरतरूके तलवार जैसे पत्तेके प्रहारसे शरीर छिद जाये उसका दुःख, अति तीव्र शीत उष्णताका दुःख, असुरकुमार देवोंके द्वारा दिये जानेवाला त्रास, शरीरका छेदन–भेदन, असह्य क्षुधा–तृषा और ऐसे अनेक तरहके अन्य दुःख नरकमे बहुत दीर्घकाल तक जीवको सहना पड़ता है। वे कमसे कम दस हजार वर्षसे लेकर ३३ सागरोपमके असंख्यवर्ष तक ऐसे दुःख सहन करते हैं और वहासे निकलकर कोई शुभ कर्मके योगसे मनुष्यगति पाते हैं। नरकमेसे निकलकर कोई जीव तिर्यंच होते हैं और कोई मनुष्य होते हैं। कदाचित् मनुष्य हो तो भी आत्मज्ञानके अभावमे वे कैसे दुःख सहन करते हैं? यह बात आगेकी गाथाओंमे कहेंगे।

जो तिर्यंच या मनुष्य क्रूर पाप करता है वह नरकमे जाता है। एक मनुष्य जो कि कसाई जैसा था, वह मुरगीके कितने ही छोटे छोटे बच्चोंको पकड़कर, उनकी पंख अपने हाथोंसे ऐसे तोडता था– मानों वनस्पतिके पत्ते ही तोड़ रहा हो, पंख तोड़नेके बाद उन जीते बच्चोंको बेसन मे मिलाकर, उबलते हुए तेल मे पकाकर पकौडी बनाता था। रे! ऐसे क्रूर परिणामवाला जीव नरकमें न जाये तो और कहा जाये?

मृग और उस जैसे निर्बल प्राणी—जो कि किसीको त्रास नहीं देते और मात्र घास खाकर जीते हैं, उनको भी शिकारी लोग बन्दूककी गोलीसे फटाफट उड़ा देते है। एक मनुष्यने गोली लगाकर हिरनको बेध डाला और बादमे उस बेचारे तड़पते हुए हिरनके पासमे जाकर कूदता हुआ खुशी मनाने लगा। अरे, ऐसे पापी लोग नरकमे न जाये तो और कहां जाये?

वीतरागी देव-गुरु-धर्मके उपर उपद्रव करनेवाले, तीव्र आरंभ-परिग्रह व हिंसामे ही जीवन बिताने वाले, मास-मद्य-मदिरा-शिकार-मच्छी-अण्डे-परस्त्री आदिका सेवन करनेवाले ऐसे महा पापी जीव मरके नरकमे जाते है और वहां अपने पापोंका फल भोगते हैं। नरकमे पीनेका पानी या खानेका अन्न कभी भी नहीं मिलता, अनन्ती भूख-प्याससे वे जीव पीड़ित रहते हैं। धर्मकी विराधना करनेसे ही जीवको एसा दुःख भोगना पड़ता है। आत्माके स्वभावकी आराधनाका सुख अनन्त है और उसकी विराधनाका दु'ख भी अनंत है। जो स्वभाव सो सुख, जो विभाव वह दुःख—यदि इतना मूल

सिद्धान्त समझ ले तो जीव संयोगको दु खरूप न मानकर अपनेको दु खरूप ऐसे विभावोंसे पीछे हट जाय और अपने सुखस्वभावके सन्मुख होकर उसका अनुभव करे।

अनादिकालसे मिथ्यात्वके कारण जीव अकेला दु'ख ही भोग रहा है। कभी साताकी अनुकूल सामग्री मिलने पर उसमें वह सुख मानता है, परन्तु वह मात्र कल्पना ही है, वास्तविक सुख नहीं। एक जगह कहा है कि इस संसार-सम्बन्धी जो दु ख है वह तो सचमुच दु ख ही है, परन्तु ससारसम्बन्धी जो सुख है वह सच्चा सुख नहीं है, वह तो अज्ञानीजनोंकी कल्पना ही है। जो आत्मिक सुख है वही सच्चा सुख है, परन्तु वह तो आत्मज्ञानके बिना अनुभवमे नहीं आ सकता। इस कारण अज्ञानी सदा दु खी ही है। अच्छा खाना-पीना मिले तो भी मोहसे वह जीव दु खी ही है। अरे, सुवर्णके थालमे इच्छित भोजन खा रहा हो—उस वक्त भी जीव दु खी! और नरकमे भालेसे शरीर बेधा जाता हो उस वक्त भी सम्यग्दृष्टि जीव सुखी!—यह वात बाह्यदृष्टि वाले लोगोंको कैसे दिखेगी? उसके लिये तो अन्तरकी दृष्टि होना चाहिए। जितनी स्वभावकी परिणति इतना सुख और जितना विभाव इतना दु'ख,—यह सिद्धात संयोगदृष्टि द्वारा समझमे नहीं आ सकता। संयोगका तो जीवमे अभाव है, किन्तु अज्ञानीको ऐसी भ्रमणा है कि संयोगके बिना मैं नहीं रह सकता। आहार-जलके बिना या शरीरके बिना मैं कैसे जी सकूंगा? ऐसी भ्रमणाके कारण वह संयोगके सामने ही देखता रहता है और उससे ही अपनेको सुखी-दु'खी मानता

है। भाई! नरकमें तूने अनन्तवार आहार-पानीके विना ही चलाया, वहां असंख्यवर्षो तक आहार-पानी न मिलने पर भी जीव तो अपने जीवनसे टिक ही रहा, मर नहीं गया। अत परवस्तुके विना मैं नहीं रह सकूगा—ऐसी भ्रमणाको निकाल दे और संयोगसे भिन्न अपने आत्मस्वभावको देख! तुझे अपूर्व शांति मिलेगी।

जीवोंको सयोगबुद्धि होनेसे यहां प्रतिकूल संयोगोंके कथनके द्वारा नरकादिके दु.खोंका ख्याल कराया है। नरकमे जीवने जो भोगे उसकी क्या बात? भाई, ऐसा दु'ख तुमने तुम्हारी ही भूलसे भोगे है, कोई दूसरेने तुमको दु खी नहीं किया। अत. तुम्हारी भूलको मिटाकर चैतन्यस्वभावकी आराधना करो, जिससे तुम्हारा दु'ख मिटेगा और तुम्हें सुख होगा।

इस प्रकार नरकगतिके दु खोंका वर्णन किया और उससे छूटनेका उपदेश दिया। नरकके दु खोंमेसे निकल कर कदाचित् शुभपरिणामोंसे मनुष्य हुआ, तो मनुष्यपनेमे भी आत्मज्ञानके विना जीव कैसे-कैसे दु.खोंको भोगता है? उसका वर्णन अब करेंगे।

मनुष्यगतिके दुःखोंका वर्णन

तीन लोकमे सुखका कारण ऐसा वीतरागविज्ञान, वही जीवको हितरूप साररूप व मंगलरूप है। इसके विना मिथ्यात्वसे जीव ससारकी चार गतियोंमे कैसे दु खोंको भोग रहा है—उसका यह वर्णन चल रहा है। जीवके परिभ्रमणका हाल दिखाकर उससे छूटनेका मार्ग दिखाना है। प्रथम एकेन्द्रियसे पंचेन्द्रिय तकके तिर्यंचोंका दु ख तथा नरकका दु ख दिखाया, नरकमेसे निकलकर जीव या तो तिर्यंच होता है या मनुष्य होता है। यदि मनुष्य हो तो मनुष्यपनेमे भी कैसे कैसे दु ख होते हैं ? यह अब दिखाते हैं—

(गाथा १३-१४)

जननी उदर वस्यो नव मास अंग सकुचतैं पायो त्रास।
निकसत जे दु ख पाये घोर तिनको कहत न आवे ओर ॥ १३ ॥

संसारभ्रमण करते हुए जीवको मनुष्य अवतार क्वचित् ही मिलता है। जीव ने चार गतिके भवों मे सबसे कम भव मनुष्यगतिके किये हैं। वहुत वार नरक-तिर्यंच के दु खोंको भोगकर कठिनता से जव कभी मनुष्य हुआ, तो उसमे सबसे पहले नवमास तक तो माताके उदरमे अत्यन्त सिकुड़कर वडी तंग हालतमे रहा, स्वतंत्ररूपसे हलनचलन भी न कर सके—ऐसी भीड़मे दबकर गर्भवासरूपी जेलखानेमे नवमास तक फँसा रहा। कोई तो नवमाससे भी अधिक

लम्बे काल तक गर्भमे रहते है, तब माता-पुत्र दोनों बहुत त्रास पाते हैं। कोई कोई जीव गर्भमे ही मर जाते है और फिर उसी स्थानमे उपजते है। मनुष्य अवतार पाकरके भी बहुतसे जीव माताके पेटमे ही मृत्यु पाकर मनुष्यभव पूरा कर देते हैं। अरे, एक मास जेलकी कोटडीमें बद रहना पड़े तो भी कितना त्रास होता है? (यद्यपि जेलकी कोटडीमे तो चलने फिरनेको व सोने बैठनेकी जगह मिलती है, जब कि माताके गर्भमे तो चलने फिरनेकी जगह ही नहीं।) तो माताके गर्भरूपी अत्यन्त छोटी जेलमे बंद होकर उल्टे शिर नवमास तक जो कष्ट भोगा–उसकी क्या बात? छोटी जगहमे एक-दो घण्टे तक एक ही आसन पर बैठनेसे जीवको कैसी व्याकुलता हो जाती है? तो पेटके अन्दर थोडीसी जगहमे नवमास तक रहनेसे उसको कितनी वेदना हुई होगी? छोटी सी जगहमे नवमास तक रहा यह तो भूल गया और उसमेसे बाहर आकर अब उसे बड़े–बड़े बंगले भी छोटे पड़ते हैं।—बड़े–बडे महल पाकर भी उसे संतोष नहीं होता। अपने स्वभावकी जो महत्ता है उसको पहचान न करनेवाला अज्ञानी जीव बाहरके महल वगैरहके द्वारा अपनी बडाई मानता है। दूसरे लोगोंका बंगला–मोटर आदि वैभव देखकर वह ऐसा समझता है कि अरे, ये सब बढ गये और मैं पीछे रह गया। किन्तु अरे भाई! तुम्हारी सच्ची महत्ता तो ज्ञानसे है, बाहरके वैभवसे तुम्हारी महत्ता नहीं है।

श्री कुन्दकुन्दस्वामी कहते हैं कि आत्माको ज्ञानस्वभावके द्वारा इन्द्रियादिसे अधिक जानो, भिन्न जानो। आत्मा अखण्ड ज्ञानस्वभावी है—यही उसकी सबसे अधिकता है, ऐसे ज्ञानस्वभावको जो

जानता है वही आत्मा बडा है, वही महान है इसके सिवाय और सब बाहरकी महत्ताके भ्रमसे दुःखी ही दुःखी हो रहे हैं, वे महान नहीं किन्तु तुच्छ हैं।

हरेक आत्मा अनन्त गुणका अद्भुत भंडार है, अनन्त गुणरत्नोंकी वह खानि है। उसकी महानताकी क्या बात?— चक्रवर्ती या इन्द्रपद भी उसके पास कुछ गिनतीमे नहीं है, वह तो उसके गुणकी विकृतिका (रागका-पुण्यका) फल है। ऐसे महान अनन्तगुण सम्पन्न आत्माको दुःखका वेदन करना पडे— यह शोभा नहीं देता। अरे, चैतन्यदेवके दुःखकी कथा कहनी पड़े यह तो शरमकी बात है। यह आत्मा तो परम सुखका धाम है, अपने चैतन्यस्वरूपका मूल्य उसने न पहचाना, देहसे भिन्न निजस्वरूपको न जाना और देहमे ही अपनापन मानकर मोहित हो गया, इस कारण चारों गतिमे देहको धारण करता हुआ वह मोहसे दुःखी हो रहा है। जीवको दुःख तो अपने राग द्वेष मोहका ही है, परन्तु लोगोंके दिखनेमे संयोग आता है इस प्रकार निमित्तरूप संयोगके द्वारा दुःखका वर्णन किया है।

यहां मनुष्यगतिके दुःखोंके कथनमे गर्भ–जन्म सबंधी जो दुःख कहा, ऐसा दुःख तीर्थंकरको नहीं होता, जब माताके गर्भमे हो उस वक्त भी उनको कष्ट नहीं होता, वे तो आराधक लोकोत्तर आत्मा हैं, माताके पेटमे रहते हुए भी उनको देहसे भिन्न आत्माका भान वर्त रहा है। यहा तो जिसको देहबुद्धि है ऐसे अज्ञानीके दुःखोंकी कथा चल रही है। जो ज्ञानी हुआ वह तो सुखके पथ पर

चलने लगा, अतः ऐसे दुःखोंमेंसे वह बाहर निकल गया वह तो आनन्दके साथ मोक्षसुखको साध रहा है।

संसारमें प्रथम तो मनुष्यपना मिलना ही कठिन है, यदि कदाचित दुर्लभ मनुष्यपनेकी प्राप्ति हुई तो उसमें भी आत्मज्ञानके बिना जीव दुःख ही रहा. आत्माको भूलकर देहकी दृष्टिसे उसने अनेक तरहके दुःख भोगे। नवमास तक गर्भके अशुचिस्थानमें रहनेके बाद जब जन्म होता है तब भी बहुत त्रास पाता है। कई बार जन्म होनेके समयकी असह्य पीडासे ही मृत्यु हो जाती है, माताका मुख भी देखनेको नहीं पाता। जन्म होनेके बाद माता उसको गोदीमें ले और उसके ऊपर माताकी नजर पड़े—इसके पहले तो वह अनित्यताकी गोदमें जा पडा है। यह लड़का है या लड़की? इसकी जानकारी माताको हो उसके पहले तो उसकी आयुमेंसे असंख्यात समय कम हो चुके हैं। अनेक मनुष्य तो जन्म होते ही मर जाते हैं, अभी उसको माताने उसको देखा भी न हो इसके पहले तो वह अन्य भवमें चला जाता है। अनेक जीव माताके गर्भमें ही मर जाते हैं। कभी कभी जन्म होनेके तीव्र कष्टसे माता-पुत्र दोनों मर जाते हैं। ऐसे गर्भ-जन्म व मरणके महान दुःखोंसे यह संसार भरा है। संसारमें ऐसा दुःख जीव खुद भोग ही रहा है फिर भी उससे छूटनेकी तो वह परवाह नहीं करता और दूसरोंसे अपनी अधिकाई दिखानेके अभिमानमें ही अवतार खो देता है। संसारमें भ्रमण करते हुए जीवको मनुष्य पर्यायके मिलने मात्रसे दुःख नहीं मिट जाता, मनुष्य हो करके यदि आत्मज्ञान करे तब ही उसका दुःख मिटता है; परन्तु मनुष्य

हो करके भी जो जीव धर्म पानेकी दरकार नहीं करता वह तो चार गतिके चक्करमे दुःखी ही रहता है। उसके लिये कहते हैं कि—

वह पुण्य के पूंज से तुझे शुभदेह मानव का मिला,
तो भी अरे! भवचक्र का फेरा नहीं तेरा मिटा।

अरे भाई! बहुत पुण्य के द्वारा तुझे ऐसा मनुष्यभव मिला उसमे भी यदि आत्माकी पहचान नहीं करेगा तो तेरा भवचक्रका भ्रमण कैसे मिटेगा? आत्मज्ञान के विना जीव मनुष्य से फिर नरक-तिर्यंचादि मे रुलता है। यह मनुष्यपना सदैव टिकनेवाला नहीं है, अतः इन्द्रियसुखों के पीछे उसको मत गॅवाना, लक्ष्मी कमाने मे जीवन बरवाद मत करना। क्योंकि—

'यह नरभव फिर मिलन कठिन है जो सम्यक् नहीं होवे।'

बाह्य सुखोंके पीछे लगने से अन्दर के सच्चे आत्मिकसुखको जीव भूल जाता है, अज्ञान से उसका भावमरण होता है और वह दुःखी होता है। वास्तव मे देखा जाय तो देह के वियोगरूप मरण जीवको कष्टदायक नहीं है किन्तु मोहरूप भावमरण ही कष्टदायक है। जीवको दुःख नहीं सुहाता तथापि अज्ञानके कारण वह दुःखका ही अनुभव कर रहा है। अरे, अज्ञानका वह दुःख वचन से कहा नहीं जाता। वचन मे तो अल्प ही कथन आता है, बाकी वचन के अगोचर जो बहुत दुःख जीव भोग रहा है वह वचन से कहा नहीं जा सकता। मनुष्य गति में गर्भ व जन्म के जो दुःख हैं उसका थोड़ा वर्णन किया, फिर उसके बाद भी वह कैसे-कैसे दुःख भोगता है? उसका कथन आगेकी गाथा मे कहते हैं।

मनुष्यगतिके अन्य दुःखोंका कथन

(गाथा-१४)

बालपनं मे ज्ञान न लह्यो तरुणसमय तरुणीरत रह्यो।
अर्धमृतकसम बूढापनो, कसे रूप लखे आपनो ॥१४॥

तीर्थंकरादिके जीव तो बालपनसे ही आत्मज्ञान सहित होते हैं, पूर्व भवमेंसे ही आत्माका ज्ञान साथमे ले करके वे अवतरते है। उत्तमकालमे तो इस भरतक्षेत्रमे भी आत्मज्ञान सहित जीव अवतरित होते थे और विदेहक्षेत्रमे तो अब भी ऐसे आराधक जीव अवतरित होते हैं। नया आत्मज्ञान मनुष्यको आठ वर्षकी आयुके पहले प्रगट नही होता, परन्तु जो पूर्व भवमेसे ही आत्मज्ञान साथमे लेकर आते है उन्हे तो बचपनमे भी आत्मज्ञान रहता है। अभी तो डगमगाते कदमोंसे चलनेका भी न आता हो किन्तु अन्दरमे देहसे भिन्न आत्माका अनुभवज्ञान निरन्तर चल रहा हो, ऐसे आराधक जीव तो छुटपनसे ही ज्ञानी होते हैं। यहां दुःखके प्रकरणमे ऐसे आराधक जीवोंकी बात नहीं है, क्योंकि वे तो दुःखसे छूटकर सुखके पथमे आ गये है इस कालमे कोई आराधक जीव इस भरतक्षेत्रमे अवतार नहीं लेते, परन्तु यहां अवतार होनेके बाद किसी पूर्वसंस्कार आदिके कारणसे कोई कोई विरले जीव आत्मअनुभव प्रगट करके आराधक हो जाते हैं; उन्हें धन्य है

और वे सुखी है। यहा तो जो जीव मिथ्यात्वादिके सेवनसे दु खी हो रहा है उसको दु खसे छुडानेके लिये यह उपदेश है।

बडी कठिनाईसे मिला हुआ यह मनुष्य जीवन भी बहुतसे लोग अज्ञानमे ही गँवा देते हैं। बालपन तो बेसमझमे खोया, उस वक्त आत्महितकी बात सूझी ही नहीं। कई लड़के बचपनसे लेकर २०-२५ साल तकका जीवन खेलकूदमें एवं लौकिक नि सार पढाईमें गँवाते हैं, उन्हें तो धर्मके अभ्यासकी फुरसत ही कहां है? और यदि फुरसत मिल भी जाये तो खेलकूदमे, घूमने-फिरनेमे, सिनेमा देखनेमे या तास खेलनेमे समय गँवा करके पाप बाधते है, किन्तु धर्मका अभ्यास नहीं करते, क्योंकि धर्मका प्रेम ही नहीं। (देखिये टिप्पण)* अरे, धर्मका संस्कार तो बचपनसे ही करना चाहिए। धर्मसंस्कारके विना बालपन तो खेलनेमे ही खो दिया और जब युवा हुआ तब स्त्री आदिमे मोहित हो गया अथवा धन कमानेके लिये हैरान होकर जिंदगीमे आत्महितका अवसर खो दिया। पीछे जब वृद्धावस्था आने लगी और शरीरमेसे ताकत घटने लगी, तब उस वृद्धावस्थामे अर्द्धमृतक जैसी अपनी हालत देखकर दु खी हो रोने लगा, परन्तु आत्माको न पहचाना। शरीरकी बाल-युवा-वृद्ध तीनों अवस्थासे भिन्न, ज्ञानस्वरूप आत्मा मैं हूँ,—इस प्रकार आत्मस्वरूपकी पहचानके विना मनुष्य-जीवनको हार गया। परन्तु जीवनमे कभी आत्माकी पहचान करनेका अवकाश न लिया।

---

* हाँ, आजके युगमे जो हजारा युवान लोग भी धर्मके अभ्यासमे उत्साहसे भाग ले रहे हैं वे जरूर धन्यवादके पात्र हैं।

अरे भाई ! इस मनुष्यजीवनमे युवानीका काल वह तो धर्मकी कमाई करनेका अच्छा अवसर है, ऐसे समयमे तुम रत्न-चिन्तामणि जैसा यह अवसर विषय-कषायमे क्यो खो रहे हो? इस मनुष्यजीवनकी प्रत्येक पल बहुत मूल्यवान है लाखों-अरबों रुपये देनेसे भी इसकी एक पल नहीं मिल सकती। अत —

दौल ! समझ सुन चेत सयाने काल वृथा मत खोवे।
यह नरभव फिर मिलन कठिन है जो सम्यक् नहिं होवे॥

भाई, जीवनका यह समय तुम गेद उछालनेमे (क्रिकेट आदिमे) गँवाते हो अथवा धन कमानेमे ही गँवाते हो परन्तु तुम्हारे जीवनका गेद उछल रहा है और आत्माकी कमाईका अवसर वीता जा रहा है, उसका तो कुछ ख्याल करो। ऐसा अवसर धर्मके विना खोना नहीं चाहिए। मनुष्य भव अनन्तवार मिल चुका परन्तु आत्मज्ञानके बिना जीवने उसको व्यर्थ गँवा दिया। युवानीका काल विषयवासनामे या धनादिके मोहमे एसा खो दिया कि आत्माकी वात सूझी ही नहीं। इसप्रकार जीवनका कीमती समय पापमे गॅवा दिया। यद्यपि आत्माका हित करना चाहे तो युवानीमे भी कर सकता है, किन्तु जो आत्माकी दरकार नहीं करते उनको कहते है कि भाई! अनन्तबार तुमने आत्माकी दरकारके विना युवानी पापमे ही गंवा दी, अत इस अवसरमे आत्महितके लिये अवश्य जागृत होओ।

यह खबर भी नहीं रहती कि वृद्धावस्था कब घुस गई? और युवानी कहा चली गई? वृद्धावस्था आने पर अधमुआ जैसा हो

जाता है, देहमे अनेकविध रोग हो जाये, चलना-फिरना बन्द हो जाये, खाने-पीनेकी पराधीनता हो जाये, इन्द्रियां काम करे नहीं, आखोंसे बराबर दिखे नहीं, स्त्री-पुत्रादि भी कुछ वात सुने नहीं और खुदको आत्मज्ञान तो है नहीं, दृष्टि तो संयोगकी तरफ ही लगी हुई है, अतएव मानों सारा जीवन ही हार बैठा हो—एसा वह मोही जीव दु खी-दु खी हो जाता है। परन्तु अपनी आत्मा उन बाल-युवा-वृद्ध तीनों अवस्थाओंसे भिन्न ज्ञानानन्दस्वरूप है उसको वह जानता नहीं है और आत्मभानके बिना ही मनुष्यभव खो देता है।

वृद्धावस्था मे भी यदि आत्माका कल्याण करना चाहे तो कर सकता है। पहले के जमाने मे तो ऐसे प्रसंग बनते थे कि अनेक लोग अपने सिरपर सफेद बालको देखते ही वैराग्य पाकर दीक्षा ले लेते थे। परन्तु देह से भिन्न आत्माका जिसको ज्ञान ही नहीं वह दीक्षा कहां से लेगा? अज्ञानी अपने चैतन्यतत्त्वकी श्रद्धाको छोडकर के देहकी अनुकूलता मे ही मूर्छित हो रहा है और प्रतिकूलता आने पर मानों दु खके ढेर मे ही दब गया हो।—ऐसा दीन हो जाता है। ऐसा जीव सयोग के द्वारा अपनी अधिकाई मनाना चाहता है। भाई! संयोग से तुम अपनी अधिकता मान रहे हो परन्तु यह तो दिखाओ कि संयोगके बढ़नेसे तुम्हारे आत्मामे क्या बढ़ गया? वैसे तो हाथी और ऊंटका शरीर बडा होता है, तो क्या इससे उसके आत्माकी कोई बडाई हो गई?—ना, संयोगसे आत्माकी बडाई या महत्ता नहीं हो सकती, आत्माकी अधिकता-बडाई या महत्ता तो अपने ही ज्ञानस्वभाव से है। मेरा आत्मा

ज्ञानस्वभाव के कारण अन्य सब पदार्थो से अधिक है, रागसे भी वह अधिक है; आत्माकी ऐसी महत्ताको न जाननेवाला जीव शरीर, कीर्ति, धन, परिवार, मकान, पदवी, खिताब, आवाजकी मधुरता या शुभराग,—इनके द्वारा अपनेको महान समझता है। अहो, ज्ञानस्वभावी आत्मा सारे विश्वमें श्रेष्ठ है (-समय मे सार है), विश्वमे ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो कि ज्ञानस्वभावकी तुलनामे आ सके। अतः हे जीव! तेरे ज्ञानस्वभावी आत्माकी महिमाको समझ और इसके सिवा शरीर-धन आदि सभीका मोह छोड़। दूसरोंके पासमे धनादिका विशेष संयोग देखकर तेरे मनमे जलन मत कर। 'अन्य देवोंके पासमे बहुत वैभव और मेरे पास थोड़ा' ऐसे लोभकी जलनसे स्वर्गके देव भी दुखी होते है, यह बात देवगतिके दुःखकथनमे कहेंगे।

यहां कहते है कि 'कैसे रूप लखे आपनो?' अर्थात मोही प्राणी अपने स्वरूपका अनुभव कैसे करे? जिसे बचपनमे तो कुछ सूझबूझ ही नहीं, युवानी जो विषयों मे गॅवाता है और वृद्धावस्था मे शक्तिहीन अधमरा जैसा होकर रोने लगता है,—इस तरह देह-बुद्धिमें जीवन व्यतीत करनेवाला जीव आत्माका स्वरूप कैसे पहचाने? 'कैसे रूप लखे आपनो?'—ऐसा कहकर सम्यग्दर्शनकी बात ली है। अपना रूप जानना अर्थात् आत्मस्वरूपका सम्यग्दर्शन करना यही हितका उपाय है, यही वीतरागविज्ञान है, यही सन्तगुरुओंका उपदेश है और उसमे ही मनुष्यभवकी सार्थकता है।

देखो, यहा पर शुभरागकी बात न की, 'कैसे रूप लखे अपनो' ऐसा कहा, परन्तु 'कैसे करे शुभराग' ऐसा न कहा,

क्योंकि राग तो जीव अनन्त वार कर चुका, शुभराग किया तव तो मनुष्य हुआ, यह अपूर्व वात नहीं है। जीवने अपना सच्चा रूप कभी जाना नहीं, सम्यग्दर्शन किया नहीं, अत अपना रूप लखना-अनुभव मे लाना यही अपूर्व चीज है, उसीमे जीवका हित है।

यदि मोह छोडके जीव अपना स्वरूप जानना चाहे तो जव कभी वह जान सकता है, किन्तु मोह से वह वाहरमे ही लगा रहता है, अत अपने निजस्वरूपको कैसे देखे? भाई, अभी ऐसा अवसर तुम्हे मिला है तो अव आत्महित के लिये उद्यम करना चाहिए। मृत्यु के समय यह सव सामग्री यहीं पर पडी रहेगी, अत अभी जीतेजो उसका मोह छोड़कर आत्मस्वरूपकी पहचान करो।

'इस समय तो खूव कमाई कर ले, वाद मे वृद्धावस्था मे निवृत्त होकर आत्महितके लिये कुछ कर लेंगे'—ऐसा सोचकर, आत्महितके लिये जीव वेपरवाह रहता है परन्तु भाई रे! वृद्धावस्था आने तक की लम्वी आयु होगी—ऐसा कहा निश्चित है? अनेक लोगोंकी आयु युवावस्थामे भी खत्म होती दिखती है, तव फिर वृद्धावस्थाका कहा भरोसा? अभी युवान अवस्थामे तुम कहते हो कि वृद्धावस्था मे करेंगे, परन्तु जव वृद्धावस्था आयेगी और शक्तियाँ क्षीण हो जावेगी तव तुमको पछतावा होगा कि अरेरे, युवानीमे जव समय था तव आत्माकी कुछ दरकार नहीं की। अत भविष्यका वादा छोड़कर अभी से ही आत्महित के लिये विचार करना चाहिए और आत्माकी कमाई कैसे हो—वैसे उद्यममे लगना चाहिए।

संयोगसे आत्मा भिन्न है, वाह्य संयोगकी सुविधामे तुम संतोप मान रहे हो—परन्तु अरे भाई! उस संयोगमे तुम हो ही कहा?

तुम्हारा अस्तित्व उसमें नहीं है, तुम्हारा रूप, तुम्हारा अस्तित्व उससे भिन्न है, तुम तो ज्ञानस्वरूप हो तुम्हारे सच्चे रूपको तुम पहचानो। अन्तर मे शांति से विचार करो कि मैं कौन हूं ? मैं कहां से हुआ ? मेरा असली स्वरूप कैसा है ?

जीवको एकेन्द्रिय से असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक के भवो मे तो विचार करनेकी भी शक्ति नहीं थी अब विचार करनेकी शक्ति मिली है तो आत्महितका विचार करके उसका सदुपयोग करना चाहिए। बहुत से जीव मनुष्य होने पर भी इतनी मंदबुद्धिवाले होते है कि बिलकुल मूर्ख ही बने रहते है। किसीको थोडी बहुत बुद्धि हो तो उसको वे बाह्यकार्यो के तीव्र अभिमान मे ही लगाये रहते हैं और वहीं अटक जाते है, किन्तु आत्माके हितके लिये अपनी बुद्धिका उपयोग वे नहीं करते। धन कैसे कमाना उसमे बुद्धि लगाता है (तथापि धनकी प्राप्ति तो पुण्यके अनुसार ही होती है), परन्तु आत्माके हितकी कमाई कैसे हो-उसमे बुद्धि नहीं लगाते। महँगा जीवन आत्महितके विचारके बिना व्यर्थ खो देते हैं। अरे, यह अमूल्य जीवन, उसको मात्र धन, स्त्री या शरीरके लिये फेंक मत दे। आत्महितका ऐसा उपाय कर कि जिससे संसारके दुःख फिरसे भोगना न पड़े, अपनी आत्माको मोक्षके पथमे लगा।

तुम्हारे चैतन्यप्रभुको तुमने कभी न देखा, अब तो इस समय उसको अवश्य देखो। चैतन्यप्रभुको देखकर सम्यक्दर्शन पानेका यह अवसर है —

दिखा दे रे सखी दिखा दे
चंद्रप्रभु मुखचंद्र सखी मुझे दिखा दे

मुमुक्षु अपने चैतन्यप्रभुके दर्शनकी तीव्र भावना भाता हुआ कहता है कि–अरे! अनादिके इस संसार-भ्रमणमे एकेन्द्रियसे लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय तकके अनंत भवोमे मैंने कभी मेरे चैतन्यप्रभुको न देखा क्योंकि उस वक्त तो देखनेकी शक्ति ही नहीं थी, परन्तु अब इस मनुष्य अवतारमे मुझे चैतन्यप्रभुको देखनेका अवसर आ गया है; अत हे चेतना बहन! मेरे चैतन्यप्रभुका दर्शन मुझे करा दे—'दिखा दे सखी दिखा दे।'

यह अवसर है चैतन्यप्रभुके दर्शनका। अपने चैतन्यप्रभुको देखनेकी दरकार ही जीव कहा करते हैं? जब निवृत्त हो, कुछ भी काम न हो तब भी धर्मका वाचन-विचार करनेको बजाय व्यर्थ ही दूसरोंकी चिन्ता किया करते हैं, धनकी चिन्ता, शरीरकी चिन्ता, स्त्री-पुत्रादिकी चिन्ता गावकी चिन्ता, राष्ट्रकी चिन्ता और सारी दुनियाकी चिन्ता,—ऐसे परकी अपार चिन्तामे व्यर्थ काल गॅवाते हैं, परन्तु स्वयं अपने आत्माके हितकी चिन्ता नहीं करते। परकी चिन्ता करना व्यर्थ है, क्योंकि जीवकी चिन्ताके अनुसार तो परके कार्य नहीं होते। देहमे टी. बी. क्षय हो गया हो, ख्याल भी आ जाय कि अब इस बिछोनेसे कभी उठनेवाला नहीं और पेढी पर जानेवाला नहीं, तो भी बिछोनेमे सोता हुआ भी आत्माका विचार न करके देहका या दुकान-धन्धेका विचार किया करे और पाप बाधकर दुर्गतिमे चला जाय। यदि आत्माका विचार करे तो उसे कौन रोकता है? कोई नहीं रोकता। परन्तु उसको खुदको ही आत्माकी दरकार कहा है? अरे भाई! क्या अब भी तुझे भवदुखका थकान नहीं लगा? यदि इस मनुष्यपनेमे भी नहीं चेतेगा तो फिर कब चेतेगा?

जीव मनुष्य हो करके भी गर्भावस्थासे लेकर आखिरी वृद्धावस्था तक या मरण तक हजारों तरहके दुःख सहन करते हैं। शारीरिक दुःखोंसे भी मानसिक दुःख इतने तीव्र होते हैं कि जो सहन भी नहीं हो सकते और कहे भी नहीं जाते। उन दुःखोंसे मन ही मन बेचैन रहकर क्लिष्ट होता है और बहुत दुःखी होता है। लोगोंमे बालकपना निर्दोष समझा जाता है परन्तु उसमे भी अज्ञानपनेके कारण जीवको बहुत कष्ट भोगना पडता है। यह बात मिथ्यात्व और अज्ञानसे होनेवाले दुःखोंकी है जिसको मोह नहीं उसको दुःख भी नहीं। तीर्थंकरादिको भी बचपन तो होता है, किन्तु उनकी तो बात ही निराली है उनको तो बचपनमे भी देहसे भिन्न आत्माका भान है। तिर्यंचमे एवं नरकमें भी असंख्यात जीव सम्यग्दृष्टि हैं, वे सम्यग्दर्शनके प्रतापसे सुखरसकी गटागटी कर रहे हैं, उन्हें यद्यपि कुछ दुःखका वेदना भी है परन्तु शुद्ध-चैतन्यके अतीन्द्रियसुखकी महत्ताके सामने वह दुःखवेदना नगण्य है। यहा तो जिन्हें चैतन्यके सुखका अनुभव नहीं है और मिथ्यात्वसे अकेले दुःखका ही वेदन कर रहे हैं ऐसे मिथ्यादृष्टि जीवोंके दुःखकी कथा है। चारगतिके हलके अवतार मिथ्यात्वके फलसे ही होते हैं, उनमेसे तिर्यंच नरक व मनुष्य इन तीन गतियोंके दुःखोंका वर्णन किया। अब मिथ्यात्वके साथ किसी शुभ-भावसे पुण्य बांधकर स्वर्गमे जाय तो वहां भी अज्ञानके कारण जीव दुःखी ही है,-यह बात देवगतिके दुःखोंके वर्णनमे कहेंगे।

देवगतिके दुःखोंका वर्णन

लोगोंको देवगतिका नाम सुनते ही, मानों उसमें सुख होगा —ऐसा भास होता है, परन्तु सुख तो आत्मामे है, और कहीं नहीं। चारो ही गति कर्मका फल है, उसमे कहीं सुख नहीं है। तिर्यंच नरक व मनुष्य इन तीनों गतियोंमे दुःख होनेकी बात तो जीवोंको जल्दी समझमे आती है, परन्तु देवगतिमे–स्वर्गमे भी दुःख है—यह बात यहां समझाते है —

(गाथा १५–१६)

कभी अकाम निर्जरा करे, भवनत्रिकमें सुर–तन धरें।
विषयचाह–दावानल दह्यो मरत विलाप करत दुःख सह्यो ॥१५॥

देवोंके चार प्रकार हैं, उनमेसे भवनवासी, व्यन्तर व ज्योतिषी—ये तीन प्रकारके देवोंमे मिथ्यादृष्टि जीव ही उत्पन्न होते हैं, सम्यग्दृष्टि जीव उनमे उत्पन्न नहीं होते। यद्यपि वहाँ उत्पन्न होनेके बाद कोई कोई जीव सम्यग्दर्शन प्रगट कर लेते है, परन्तु उत्पन्न होनेके समयमें तो मिथ्यादृष्टि ही होते हैं। चौथा प्रकार वैमानिकदेवोंका है, उसमे नवमी ग्रैवेयक तक तो मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि दोनों जाते हैं, फिर उससे आगेके विमानोंमे सम्यग्‌दृष्टि ही जाते हैं, मिथ्यादृष्टि वहां नहीं जाते।

यहां पर यह कहना है कि अज्ञानी कदाचित अकाम-निर्जरा करके हलकी देवपर्यायमे उपजे, तो वहां भी अज्ञानवश विषयोंकी चाहरूप

दावानलसे वह जल रहा है, अतएव दुःखी ही है और देवकी आयु पूरी होने पर मृत्युके समय विलख-विलखकर आर्त्तध्यान करता है। इस प्रकार देवलोकमे भी अज्ञानी दुःखी ही रहता है। भूख-प्यास आदिको समतापूर्वक सहन करके शुभभाव रखनेसे कुछ अकामनिर्जरा होती है और पुण्यका वन्ध होता है, उससे जीव स्वर्गमे जाते है, अज्ञानीके शुभभावसे होनेवाली यह निर्जरा मोक्षका कारण नहीं बनती, सम्यग्दर्शनपूर्वकके शुद्धभावसे होनेवाली निर्जरा ही मोक्षका कारण वनती है। अज्ञानदशामे शुभपरिणामसे अकाम-निर्जरा करके स्वर्गका देव तो जीव अनन्तवार हो चुका, परन्तु उससे उसका संसार-भ्रमण न मिटा। अज्ञानीने कभी चैतन्यसुखको तो देखा नहीं, अतः हलकी जातिका देव हो तो भी वहांके देवलोकके वैभवसे मोहित होकर वह उसीमे मूर्छित हो जाता है और पाच-इन्द्रियोंके विषयोंकी अभिलाषासे दुःखी रहता है। तीन प्रकारके उन देवोंकी आयु-स्थिति कमसे कम दस हजार वर्षसे ले कर एक सागरोपम तककी है, उन दोनोंके बीचमे एक-एक समयकी अधिकता करके असंख्य प्रकारमे आयुके भेद होते है, उनमेसे प्रत्येकमे अनंतवार जीव उपजा और मरा, परन्तु उनमे कहीं उसको सुख न मिला।–कहासे मिले? चारों गति ससार है, जो संसार है सो परभाव है और परभाव है सो दुःख है। जितनी स्वभावदशा प्रगटे उतना परभाव मिटे और उतना सुख हो। समयसारकी पहली गाथामे मोक्षगतिको स्वभावभावभूत कही है, इसके अतिरिक्त संसारकी चारों गति विभावरूप हैं और विभावका फल तो दुःख ही होता है। अतः योगसारमे कहा है कि हे जीव! यदि चारगतिके

दुःखसे तुम डरते हो, उस दुःखसे छूटना चाहते हो तो उसके कारणरूप सभी परभावको छोडो और शुद्धात्माका चिन्तन करके शिव-सुखकी प्राप्ति करो। सर्वज्ञकथित आत्मस्वभाव कैसा है उसको जाननेकी परवाह जो नहीं करते वे अज्ञानभावके सेवनसे चार गतिमे दुःखी होते है, स्वर्गका देव हो तो भी वे दुःखी हैं। सुखी तो सम्यग्दृष्टि-निर्मोही-सन्त हैं। सम्यग्दर्शनके विना किसीको सुख नहीं हो सकता।

भवनवासी देवोंके दस प्रकार है, व्यंतर देवोंके भी दस प्रकार हैं। (जिसको भूत पिशाच राक्षस कहा जाता है वह व्यंतर देवोंकी जाति है।) और ज्योतिषी देवोंके सूर्य-चन्द्र आदि पाच प्रकार है। जिस मिथ्यादृष्टि जीवने किसी शुभभावसे अकामनिर्जरा की हो वही ये तीन प्रकारके देवोंमे उत्पन्न होता है। अनेक जीव वहा देव होनेके वाद भगवानके समवशरणमे आकर धर्मश्रवण करते हैं और सम्यग्दर्शन भी पा लेते हैं, शेष वहुभागके देव तो विषयोंकी चाहनासे दुःखी ही रहते हैं।

देवोंको वाहरमे भूख-प्यास-रोगादिका कोई दुःख नहीं होता, वाहरमे तो उन्हें वड़े-वड़े राजाओंसे भी अधिक वैभव होता है परन्तु अन्तरमे वे विषयोंकी चाहसे व हास्य-कुतूहलसे आकुल-व्याकुल होते हुए दुःखी हो रहे हैं और जव मृत्युका समय नजदीक आता है तव चिरपरिचित भोगसामग्रीका वियोग होता देखके आर्त्तध्यानसे पीड़ाते हैं और वहुत दुःखसे मरकर दुर्गतिमे चले जाते हैं।

देवोंके कंठमे मंदारमाला होती है—जो कभी मुरझाती नहीं किन्तु देवलोककी आयुमेसे जव अन्तिम छह मास वाकी रहते है

तब मिथ्यादृष्टि देवोंकी वह मन्दारमाला मुरझाने लगती है, उनके आभूषणोंका प्रकाश मन्द होने लगता है, ऐसे चिह्नोंको देखकर, विभंगज्ञानसे वे जान लेते हैं कि अब मृत्युका काल निकट आया है। अरे! अब इस देवलोकके उत्तम भोग मुझे कहीं भी नहीं मिलेगा, इन देवियोंका वियोग हो जायगा, न जाने अब मैं कहां जाऊंगा? अब क्या करूं? ऐसे विषयोंकी तीव्र इच्छासे महा दुःखी होते हुए वे मरते हैं, और मरकर आर्त्तध्यानके कारणसे कुत्ते-गधे आदि किसी तिर्यंचमे अथवा तो एकेन्द्रियमें अवतार लेते हैं कोई मनुष्यमे भी अवतरते हैं। कोई भी देव मरकर के सीधे नरकमे नहीं जाते और जो देव सम्यग्दृष्टि हैं वे तो उत्तम मनुष्यमे ही अवतार लेते हैं, आयु पूरा होनेके समय वे अपना चित्त जिनदेवके पूजनादिमें लगाते है, उन्हें स्वर्गके किसी वैभवकी अभिलाषा नहीं है, अतः वे मिथ्यादृष्टि देवोंकी तरह दुःखी नहीं होते।

कर्मका जितना उदय हो उतने ही प्रमाणमे जीवको विकार हो—ऐसा कोई नियम नहीं है, हीनाधिकता होती है। अशुभ-कर्मका उदय होते हुए भी यदि समतापूर्वक शुभभावसे जीव सहन करें तो अशुभकर्मकी अकामनिर्जरा होकर वह देव होता है, परन्तु देव हो करके भी अज्ञानी जीव रागमे लीनतासे दुःखी ही रहता है। जीव जब तक सम्यग्दर्शन प्रगट न करें तब तक उसका दुःख मिटता नहीं और सुख होता नहीं।

सम्यग्दर्शनके बिना वैमानिकदेव भी दुःखी होता है—यह बात आगेकी गाथामे कहते हैं।

देवलोकमें भी सम्यग्दर्शनके बिना दुःख ही है

अज्ञानके कारण संसारकी चारो गतिमे जो दुःख जीव भोग रहा है उसका वर्णन करते करते अब इस प्रथम अधिकारके अंतमें यह दिखाते हैं कि-ससारमें अज्ञानीका सबसे ऊंचा पुण्यस्थान जो वैमानिक स्वर्ग, उसमे भी सम्यग्दर्शनके विना जीव दुःख ही पाता है—

(गाथा-१६)

जो विमानवासी हू थाय सम्यग्दर्शन विन दुःख पाय ।
तहँते चय थावर तन धरे यों परिवर्तन पूरे करै ॥ १६ ॥

सम्यग्दृष्टि जीव सर्वत्र सुखी है सम्यग्दर्शनसे सहित जीव सर्वत्र दुःखी है। स्वर्गका वड़ा देव हुआ तो भी अज्ञानी जीव 'सम्यग्दर्शन विन सुख न पायो' सम्यग्दर्शनके विना दुःख ही पायो। जीवको सम्यक्त्वके समान सुखकारी तीनकाल-तीनलोकमे दूसरा कोई नहीं है और मिथ्यात्वके समान दुःखकारी तीनकाल-तीनलोकमे दूसरा कोई नहीं है। कोई जीव मिथ्यात्वकी तीव्रताके कारण देवमेसे मरकर सीधा एकेन्द्रियमे जाता है और महान दुःख पाता है। इस प्रकार निगोदमेसे निकला हुआ जीव चार गतिका भव करके फिर निगोदमे चला जाता है और परिवर्तनको पूरा करता है, जीव अनन्तकालसे ऐसा परिवर्तन कर रहा है और बहुत

दु:ख भोग रहा है। कब मिटे जीवका यह परिभ्रमण और दु:ख? –जब सम्यग्दर्शन करे तब। सम्यग्दर्शनके बिना तो नवमी ग्रैवेयकसे निगोद और निगोदसे फिर नवमी ग्रैवेयक,—ऐसा भवचक्र झूलेकी तरह घूमा ही करता है। नवमी ग्रैवेयकसे ऊपर मिथ्यादृष्टि जीव नहीं जाते। नव ग्रैवेयकोंके ऊपर नव अनुदिश विमान और सर्वार्थसिद्धि आदि पांच अनुत्तर विमान हैं, उनमे तो सम्यग्दृष्टि जीव ही जाते हैं, अत: उनकी बात यहां नहीं ली गई, क्योंकि यहां तो मिथ्यादृष्टिके दु:खोंका कथन है। सम्यग्दृष्टिके तो अत्यन्त अल्प संसार बाकी रहा है और उसमें भी उत्तम देव या उत्तम मनुष्यका ही भव होता है। उसमे आत्माकी आराधना बढ़ाते हुऐ वे आनन्दपूर्वक मोक्षको साधते हैं।

जीव मिथ्यात्वसे पंचप्रकारके परिवर्तनमे रुलता है—द्रव्यपरिवर्तन, क्षेत्रपरिवर्तन, कालपरिवर्तन, भावपरिवर्तन और भवपरिवर्तन, मिथ्यादृष्टिके द्वारा ग्रहण करने योग्य सभी परमाणुओंको जीवने अनन्तबार ग्रहण करके छोड़ा, अनुक्रमसे लोकके सभी प्रदेशोंमे अनन्तबार वह जन्मा-मरा, वीस क्रोडा-क्रोडी सागरके कालचक्रके हरएक समयमे उसने जन्म-मरण किया, मिथ्यादृष्टिके योग्य जितने शुभ-अशुभपरिणाम हैं वह भी उसने अनन्तबार किया और चारों गतिमें मिथ्यादृष्टिके योग्य सभी भव भी उसने अनन्तबार किये,– परन्तु सम्यग्दर्शनके बिना उसने सर्वत्र दु:ख ही पाया। कभी वैमानिक देव होकर फिर वहांसे चय कर सीधा एकेन्द्रियमें फूल हो अथवा हीरा-मोती आदि पृथ्वीकायमे उपजे। हीरा-मानिक-मोती-पन्ना ये पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय जीव हैं। करोडों-अरबोंके मूल्यवाले

हीरा-मोती, उनके द्वारा लोग अपनेको सुखी मानते हैं, परन्तु वे हीरे-मोती स्वयं तो एकेन्द्रियपनके महान दुःखोंसे दुःखी हैं, दूसरे लोग उनकी वहुत कीमत करें उससे उन्हें कुछ सुख नहीं मिल जाता, वे तो महान दुःखी हैं।

संसारमे भ्रमण करते हुए जीवने रौ-रौ नरकका दुःख भी भोगा और स्वर्गका देव होकर वहां भी दुःख ही भोगा, लाखों जीवोंकी हिंसा करने वाले कसाईका भाव भी उसने किया और त्यागी होकर अहिंसादि पंचमहाव्रतके शुभरागका भाव भी उसने किया, परन्तु अशुभ एवं शुभ-ऐसा जो कषायचक्र उसमेसे वह बाहर न निकला,-सम्यग्दर्शनादि वीतरागभाव उसने कभी नहीं किया। आगे चौथी ढालमे कहेंगे कि—

मुनिव्रतधार अनन्तवार ग्रीवक उपजायो।
पै निज आतमज्ञान बिना सुख न पायो॥

आत्माका ज्ञान ही जहा नहीं वहां सुख कैसे हो? ज्ञानके विना जीव अकेला दुःख ही दुःख पायो! उस दुःखका कारण क्या? -कि जीवकी अपनी भूल अर्थात् मिथ्याश्रद्धा-मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र, उसका त्याग करनेके लिये उसका वर्णन अब दूसरी ढालमे करेंगे और फिर उसके बाद मोक्षसुखके कारणरूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रका वर्णन करेंगे। अहो, जैन सन्तोंने दुःखी जीवोंके पर करुणा करके, दुःखसे छूटनेका और सच्चा आत्मसुख पानेका उपाय दिखाया है, मोक्षका मार्ग दिखाकर महान उपकार किया है।

हे भाई ! तुम्हें चार गतिके ऐसे संसार दुःखोंसे मुक्त होकर मोक्षसुख पाना हो तो, मिथ्यात्वादिको अत्यन्त दुःखका कारण समझकर शीघ्र ही उसका सेवन छोड़ो और सम्यक्त्वादिको परम सुखका कारण जानकर उसकी आराधनामे आत्माको जोडो।

इसप्रकार पं० श्री दौलतरामजी रचित छहढालामें
मिथ्यात्वजनित संसारदुःखोंका वर्णन करनेवाला
प्रथम अध्याय पर श्री कानजी स्वामीके
प्रवचन समाप्त हुए ।

चेतन दौलत देखिये, मिटे चारगति दुःख ।
सम्यक्‌दर्शन कीजिये, सच्चा मिले सुख ॥
सम्यक्‌दर्शन-ज्ञान है तीन जगत में सार ।
वीतराग-विज्ञानसे हो जाओ भवपार ॥

अब आप पढ़ेंगे वीतरागविज्ञानके २०० प्रश्नोत्तर—

-: वीतरागविज्ञान-प्रश्नोत्तर :-

छहढालाके प्रथम अध्यायके प्रवचनोंमेंसे दोहन करके २०१ प्रश्न व उनके उत्तर यहां दिये जाते हैं। सक्षिप्त भाषामें सुगम शैलीके ये प्रश्नोत्तर सभी जिज्ञासुओंको वहुत प्रिय लगेगा और छहढालाका अभ्यास करनेमे विशेष रस जागृत होगा।

१ जगतमे कितने जीव है? अनन्त।

२ जीवोंको क्या प्रिय है? सुख।

३ जीव किससे भयभीत है? दु:खसे।

४ श्रीगुरु कैसा उपदेश देते हैं?
जिससे सुख हो और दु:ख मिटे एसा।

५ सुख किससे होता है? ...वीतरागविज्ञानसे।

६ वीतरागविज्ञान कैसा है? तीन जगतमे साररूप है।

७ कल्याणरूप कौन है? . वीतरागविज्ञान।

८ पंचपरमेष्ठीका पूज्यपना किससे है?
वीतरागविज्ञानसे।

९ वीतरागविज्ञानको नमस्कार कैसे होता है?
रागसे भिन्न आत्माकी पहचान करनेसे।

१० यहां वीतरागविज्ञानको नमस्कार किया, अरिहन्तको क्यों न किया?

वीतरागविज्ञानको नमस्कार करने से उसमे अरिहन्तको नमस्कार आ ही जाता है, क्योंकि अरिहंत आदि पांचों परमेष्ठी वीतरागविज्ञानस्वरूप हैं। अरिहंतके गुणोंको पहचानकर नमस्कार किया उसमे अरिहंतको नमस्कार आ ही गया।

११ वीतरागविज्ञान मे क्या समाता है?

उसमे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र समा जाते हैं।

१२ 'वीतराग-विज्ञान' में रत्नत्रय किस प्रकार समाते हैं?

'विज्ञान कहने से सम्यग्ज्ञान व सम्यग्दर्शन आये और 'वीतराग' कहने से सम्यक्चारित्र आया, इसप्रकार वीतराग-विज्ञानमे रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग समा जाता है।

१३ संपूर्ण वीतरागविज्ञान किसके है?

अरिहंतों के व सिद्ध भगवंतों के।

१४ एकदेश वीतरागविज्ञान किसके है?

आचार्य-उपाध्याय-साधु के एवं सम्यग्दृष्टि जीवों के।

१५ धर्मात्मा क्या चाहते हैं?

धर्मात्मा केवलज्ञान व वीतरागता चाहते है।

१६ योगीजनों सदा किसको ध्याते है?

अनन्त सुखधाम ऐसे निजआत्माको।

१७ वीतरागविज्ञानको जो वंदन करे वह रागको सारभूत मानेगा क्या?

कभी नहीं मानेगा।

१८ क्या गृहस्थको चौथे गुणस्थानमे वीतरागविज्ञान होता है ?
हा, एक अश होता है।

१९ मोक्षका कारण कौन ? . वीतरागविज्ञान।

२० शुभरागको मोक्षका कारण क्यों न कहा ?
क्योंकि वह वीतरागविज्ञान से विरुद्ध है।

२१ वीतरागविज्ञानका प्रारम्भ कहा से होता है ?
चतुर्थ गुणस्थान से।

२२ सावधानीका क्या अर्थ ?
शुद्धस्वभावकी सन्मुखता, उसकी ओर उद्यम।

२३ आत्माका स्वसंवेदन कैसा है ?
स्वसवेदन वीतराग है।

२४ साधक भूमिकामे राग होता है ?
भले हो, परन्तु जो स्वसंवेदन है वह तो वीतराग ही है।

२५ जो अपना हित चाहता हो उसे क्या करना चाहिए ?
वीतरागविज्ञान करना चाहिए।

२६ जिसने वीतरागविज्ञानको पहचानकर नमस्कार किया उसको क्या हुआ ?
उसको अपनी पर्यायमे भी वीतरागविज्ञानका अंश प्रगट हुआ।

२७ तीन लोकका मथन कर उसमेसे सन्तोंने कौन सा सार निकला ?
'तीन भुवनमे सार वीतरागविज्ञानता'।

२८ रागसे धर्म होनेका मानना-यह कैसा है?
वह तो जलके मथनके समान निःसार है।

२९ बाह्यदृष्टि जीव किसमे सन्तुष्ट हो जाते हैं?
वे शुभरागमें ही सन्तुष्ट हो जाते हैं।

३० जीव चारगतिमें क्यों रुला?
वीतरागविज्ञानके न होनेसे।

३१ चार गति कौनसी? . . तिर्यंच, नरक, मनुष्य, देव।

३२ चारगतिसे भिन्न पंचवीं गति कौन? . . मोक्ष।

३३ कैसी है मोक्षगति? वह परम सुखरूप है।

३४ परम सुखरूप मोक्षदशाकी प्राप्ति कैसे हो?
वीतरागविज्ञानसे।

३५ दुःखसे छूटनेके लिये श्रीगुरु किसका उपदेश देते हैं?
वीतरागविज्ञानरूप मोक्षमार्गका, अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रको अंगीकार करनेका उपदेश देते है।

३६ वह उपदेश किस प्रकार सुनना?
अपने हितके लिये, चित्तको स्थिर करके।

३७ जीवने कौन सा स्वाद कभी नहीं चखा?
वीतरागी परमानदका स्वाद कभी नहीं चखा।

३८ मनुष्यगतिमे कितने जीव हैं? असख्यात।

३९ नरकगतिमे कितने जीव है? असंख्यात।

४० देवगतिमे कितने जीव हैं? असंख्यात।

४१ तिर्यंचगतिमे कितने जीव हैं? अनन्त।

४२ त्रस जीव कितने हैं? असंख्यात।

४३ मोक्ष पाये हुए जीव कितने है? अनन्त।

४४ जीवको दुःखका कारण क्या है?
अपना मिथ्यात्वभाव।

४५ वह मिथ्यात्वभाव कैसे मिटे?
सच्चे भेदज्ञानके द्वारा सम्यग्दर्शन प्रगट करनेसे।

४६ सन्तकी पहली शिक्षा कौनसी है?
तेरे ही दोषसे तुझे बन्धन है, अत तेरा दोष टाल।

४७ जीवका मुख्य दोष क्या है?
दोष इतना कि परको अपना मानना और आप अपने को भूल जाना।

४८ एकेन्द्रिय जीवोंमे विचारशक्ति है?
ना, उनमे ज्ञान है किन्तु मन या विचारशक्ति नहीं है।

४९ गुरु कौन?
गुरु अर्थात रत्नत्रयधारक दिगम्बर सन्त, ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूपी गुणों मे जो बडा हो वह गुरु।

५० ऐसे गुरुओं ने जगत के ऊपर कौनसा उपकार किया है?
वीतरागविज्ञानरूप मोक्षमार्गका उपदेश देकर श्री गुरुओं ने जगतके जीवोंके ऊपर महान उपकार किया है।

५१ कुन्दकुन्दस्वामीके गुरु ने उन्हे कैसा उपदेश दिया था?
'हमारे गुरुओं ने हमारे ऊपर अनुग्रह करके शुद्धात्माका उपदेश दिया था'-ऐसा कुन्दकुन्दस्वामी कहते हैं।

५२ उपदेश द्वारा सन्तों क्या दिखाते हैं ?
शुद्धात्मा दिखाते हैं।

५३ शुद्धात्माको कैसे जानना ? . अपने स्वानुभव से।

५४ कौन है क्रियाजड़ ?
वह, जो बाह्यक्रियामे (जड़की क्रियामे) धर्म माने।

५५ कौन है शुष्कज्ञानी ?
जो मुँह से मात्र बातें करता है किन्तु मोहको छोड़ता नहीं है वह।

५६ अपना स्वरूप न समझने से क्या हुआ ?
जीवको अनन्त दुःख हुआ।

५७ धर्मोपदेश मिलने पर भी जो न सुनें–वह कैसा है ?
आत्माकी उसे दरकार नहीं है।

५८ किसके लिये है यह उपदेश ?
जो संसारके थाकसे थककर आत्माकी शान्ति लेना चाहता हो ऐसे जिज्ञासुके लिये।

५९ मुनि कैसे हैं ?
वे रत्नत्रयके धारक है व मोक्षके साधक हैं।

६० दुःखसे छूटकर सुखी होनेका कब बन सके ?
वस्तुमे उत्पाद-व्यय-ध्रुवता हो तब।

६१ दुःख मिटे व सुख होवे—इसमे उत्पाद-व्यय-ध्रुवता किस प्रकार है ?
सुखका उत्पाद, दुःखका व्यय, आत्माका टिकना यह ध्रुवता।

६२ वीतरागी सन्तोंने कैसी सीख दी है ?

वीतरागी सन्तोंने वीतरागताकी ही सीख दी है।

६३ जीवके लिये इष्ट-उपदेश हितोपदेश क्या है ?

जो भेदज्ञान कराके दु:खसे छुडावे व सुखका अनुभव करावे।

६४ जैनधर्मके चारों अनुयोगमे कैसा उपदेश है ?

चारों अनुयोग वीतरागविज्ञानके ही पोषक है।

६५ श्रीगुरु आत्महितका उपदेश किसे सुनाते हैं ?

जिसको विचारशक्ति खिली है और समझनेकी जिज्ञासा है उसे।

६६ सन्तोंने किस प्रकार जगतके पर उपकार किया है ?

अहा, सन्तोंने मोक्षमार्ग समझाके जगतके ऊपर उपकार किया है।

६७ जिनवाणी नाश कराती है—किसका ?

मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्रका।

६८ जिनवाणी प्राप्ति कराती है—किसकी ?

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी।

६९ हरेक जीवका स्वभाव कैसा है ?

ज्ञानरूप व सुखरूप।

७० तो भी उसे सुख क्यों नहीं ?

क्योंकि वह निजस्वभावको भूला है।

७१ वह भूल कब मिटे ?

स्वभावकी पहचान करे तब।

७२ शरीरके विना अकेला आत्मा सुखी रह सकता है क्या ?
हाँ, देहातीत सिद्धभगवंतो परम सुखी हैं।

७३ शरीरको छोडके (अर्थात् मरके) भी जीव सुखी होना क्यों चाहता है ?
क्योंकि आत्मामें देहके विना ही सुख है।

७४ वह सुख अनुभवमें कब आवे ?
देहसे भिन्न आत्माको अपनेमें देखते ही अतीन्द्रिय सुखका अनुभव होता है।

७५ जीवको महान रोग कौनसा है ?
मिथ्यात्व, अर्थात् 'आत्मभ्रांति सम रोग नहीं।'

७६ वह रोग कैसे मिटे ?
गुरु उपदेशके अनुसार वीतरागविज्ञानका सेवन करने से।

७७ दुःखकी दवा कौन ?
आत्मसुखका अनुभव-यही दुःख मिटनेकी एकमात्र दवा है,

७८ जीवने अब तक क्या किया ?
मोहसे अपनेको भूलके संसारमें रुला और दुःखी हुआ।

७९ जीव दुःखी क्यों हैं ? —अपनी भूलसे।

८० भूल कौनसी ? —अपनेको आप भूल गया-यह।

८१ यह भूल कितनी ?
वह भूल छोटी नहीं है परन्तु सबसे बड़ी भूल है।

८२ वह भूल कब टले ? और दुःख कब मिटै ?
आत्माकी सच्ची समझ करनेसे भूल टले व दुःख मिटै।

८३ दु ख मिटानेका अज्ञानी कैसा उपाय करते है ?
अज्ञानी जीव बाह्यसामग्रीको दूर करनेका या बनाये रखनेका उपाय करके दु ख मिटाना व सुखी होना चाहते हैं, परन्तु उनके ये सब उपाय झूठे हैं।

८४ तो सच्चा उपाय क्या है ?
सम्यग्दर्शनादिसे मोह दूर होने पर सच्चा सुख होता है।

८५ जीवकी दूनी भूल क्या है ?
एक तो मोह स्वयं करता है और फिर दूसरेके ऊपर अपनी भूल डालता है।

८६ जीव क्यों रुला ? . अपनी गलतीसे।

८७ वह गलती कैसे गले ? स्व-परका भेदज्ञान करनेसे।

८८ जीव किस कारणसे हैरान होता है ?
अपने अज्ञानसे।

८९ कर्मों जीवको हैरान करते हैं क्या ?—ना।

९० आत्माकी सच्ची समझ कब करनी ?
अभी ही, सच्ची समझके लिये यह उत्तम अवसर आया है।

९१ मोहके कारण जीव क्या करते हैं ?
अपना भान भूलके परद्रव्यको अपना मानते हैं।

९२ अज्ञानसे जीव कहा रुला ?
निगोदसे लेकर नवमी ग्रैवेयक तक।

९३ सिद्धका सुख और निगोदका दु ख, ये दोनों कैसे हैं ?
दोनों वचनातीत हैं।

९४ दु ख सातवीं नरकमे ज्यादा कि निगोदमें ?
निगोदमे।

९५ संसारमे जीवको दुर्लभ क्या है ? और अपूर्व क्या है ?
प्रथम तो निगोदमेसे निकलकर त्रसपना पाना दुर्लभ, त्रसमे पंचेन्द्रियपना दुर्लभ, उसमे संज्ञीपना दुर्लभ, उसमे मनुष्य होना दुर्लभ, मनुष्यमे आर्यक्षेत्र-जैनकुल-पाँचइन्द्रियोंकी पूर्णता दीर्घ आयु मिलना दुर्लभ और उसमे सच्चा देव-गुरु मिलना दुर्लभ है। ये सब दुर्लभ होने पर भी पूर्व मिल चुके है। फिर इसके बाद आत्माकी रुचि करके सम्यग्दर्शन प्रगट करना वह दुर्लभ एव अपूर्व है। इसके उपरान्त मुनिदशारूप रत्नत्रयकी प्राप्ति तो इनसे भी दुर्लभ है। उसकी अखण्ड आराधना करके केवलज्ञान पाना तो सबसे दुर्लभ और अपूर्व है।

९६ संसारदशामे अधिक काल किसमे बीता ?
निगोदमे।

९७ निगोदमे अधिक दु ख क्यों हैं ?
क्योंकि उन जीवोंको प्रचुर भावकलंक है, तीव्र मोह है।

९८ जीव ने अनन्त शरीर धारण किये, तो भी क्या वह देहरूप हुआ है ?
ना, शरीर से भिन्न उपयोगरूप ही रहा है।

९९ क्या अण्डेमें जीव है ?
अण्डेमे पंचेन्द्रिय जीव है, उसका भक्षण वह मांसाहार ही है।

१०० जीवको किसका उद्यम करना चाहिए ?
बोधि-रत्नत्रयकी दुर्लभता विचारके उसके लिये उद्यम करना चाहिए।

१०१ सिद्धदशा किससे भरी हुई है ?
आत्माके आनन्दसे भरी हुई है।

१०२ निगोददशा किससे भरी हुई है ?
दुःखके दरियोंसे भरी हुई है।

१०३ नरकादिमे दुःख किसका है ? तीव्र मोहका।

१०४ निगोदका जीव एक घण्टेमे कितने भव करे ?
हजारों।

१०५ अरिहन्तोंको अवतार क्यों नहीं ?
क्योंकि उन्हें मोह नहीं।

१०६ कौन अवतार करे ? जिसको मोह हो वह।

१०७ सिद्धभगवन्तों एक ही जगहमे कितने हैं ? अनन्त।

१०८ निगोद जीव एक जगहमे कितने हैं ? अनन्त।

१०९ सिद्धका सुख व निगोदका दुःख क्या दृष्टान्त द्वारा कह सकते हैं ? ना।

११० जीवने पूर्वमे कैसा भाव भाया है ?
अज्ञानसे मिथ्यात्वादि भावोंको ही भाया है।

१११ जीवने पूर्वमें कैसा भाव नहीं भाया ?
सम्यक्त्वादि भावोंको पूर्वमे कभी नहीं भाया।

११२ सिद्ध ज्यादा या निगोद ?
निगोदके जीव अनन्तगुणे है।

११३ चारगतिमे सबसे अल्प जीव किस गतिमे है?
मनुष्य गतिमे।

११४ मोक्षके साधनेके अवसरमे जीवने कौन सी भूल की?
वह रागमे व बाह्यक्रियामे धर्म मानकर रुक गया।

११५ लगातार मनुष्यके ही भव कितने हो सके?
आठ।

११६ चिन्तामणिके सामान क्या है?
एकेन्द्रियमेसे निकलकर त्रस होना।

११७ मनुष्यपनेकी दुर्लभता जानकर क्या करना?
वीतरागविज्ञानसे मोक्षको साधनेका उद्यम करना।

११८ मनुष्यपनेका मूल्य कितना?
मनुष्यपनेमे यदि आत्माको साधे तब ही वह मूल्यवान है किन्तु यदि विषय-कषायोंमे ही उसे गंवा दे तो उसकी कीमत कुछ नहीं।

११९ एकेन्द्रिय जीवोंको कौनसी चेतना है? अज्ञानचेतना।

१२० ज्ञानचेतना कैसी है?
ज्ञानचेतना आनन्दरूप है व मोक्षका कारण है।

१२१ ज्ञानचेतनाका दूसरा नाम क्या है? वीतरागविज्ञान।

१२२ जीवका मित्र कौन ? शत्रु कौन ?

ज्ञानभावसे जीव स्वयं ही अपना मित्र है, और अज्ञान भावसे आप ही अपना शत्रु है।

१२३ जीव सुखी-दु खी कैसे होता है ?

अपने सम्यक् भावसे सुखी अपने विपरीत भावसे दु'खी।

१२४ जीवके ससारभ्रमणकी कथा क्यों सुनाते है ?

उससे छूटनेके लिये।

१२५ असज्ञोजीव कैसे हैं ?

वे विचारशक्तिसे रहित हैं, नरकसे भी अधिक दु खी हैं।

१२६ क्या सिहादिक तिर्यंचोंको भी धर्मप्राप्ति हो सकती है ?—हा।

१२७ चारगतिके दु खोंको कौन भोगता है ? अज्ञानी।

१२८ ज्ञानी क्या करते है ?

वे सुखके पथ पर चल रहे है, वीतरागविज्ञानसे मोक्षको साध रहे हैं।

१२९ देहका छेदन-भेदन होने पर कौन जीव दु खी होता है ?

जिसको देहके प्रति मोह है वह।

१३० दु ख किसका है-छेदन-भेदनका या मोहका ? मोहका।

१३१ प्रतिकूल संयोग वह दु ख क्या यह व्याख्या ठीक है ?

ना, मोह ही दु ख है। जिसे मोह नहीं उसे दु ख नहीं।

१३२ आत्माको सुख किससे है ?

आत्मा अपने स्वभावसे ही सुखी है; सुख किसी संयोगसे नहीं है, बाह्य विषयोंमें सुख नहीं है।

१३३ अपनेमे सुख होने पर भी जीव दुःखका वेदन क्यों करता है?
अपने सुख स्वभावको भूल जानेसे।

१३४ नरकके जीवको आत्मज्ञान हो सकता है क्या?
हाँ, वहा भी कोई-कोई जीव आत्मज्ञान पाते हैं।

१३५ क्या नरकमे भी कोई जीव सुखी हो सकते हैं?
हा, वहा पर भी सम्यग्दर्शनके द्वारा कोई जीव सुखका स्वाद चख लेते हैं।

१३६ जीव जागे तब कितने समयमे केवलज्ञान पावे?
अन्तर्मुहूर्तमे।

१३७ अनन्तकालका अज्ञान टालनेमे कितना समय लगे?
निजशक्तिके सम्हालनेसे क्षणमात्रमे अज्ञान टल जाता है।

१३८ मेढक-बन्दर आदिको चीर कर जो विद्या सीखे-वह कैसी?
वह अनार्यविद्या आर्यमानवमे इतनी क्रूरता नहीं हो सकती।

१३९ चारगतिके दु.खसे डरनेवालेको क्या करना?
सभी परभावोंको छोडकर शुद्धात्माका चिन्तन करना।

१४० अज्ञान व दु खमय जीवन जीवको शोभा देता है?
ना।

१४१ धर्मके विना कभी सुख हो सकता है? ना।

१४२ कैसी है जीवकी दु खकथा?
जिसके सुननेसे वैराग्य आ जाये ऐसी।

१४३ सुकुमारको वैराग्य कब हुआ ?
मुनिराजके श्रीमुखसे स्वर्ग-नरकका वर्णन सुनने पर।

१४४ जीवने अनन्तदु:ख पूर्वमे सहन किये–उनकी याद क्यों नहीं आती ?
ज्ञानमे इस प्रकारकी विशुद्धि न होनेसे।

१४५ जीवको नया अवतार न करना हो तो क्या करना ?
मोक्षसुखकी साधना,-जिससे फिर अवतार न रहें।

१४६ देह छूटते समय मरणका भय किसको है ? अज्ञानीको।

१४७ उस वक्त ज्ञानीको क्या होता है ? आनन्दकी लहर।

१४८ जीवको दु:ख प्रिय नहीं है, तो भी वह दु:खी क्यों है ?
दु:खके कारणोंका वह सेवन करता है इसलिये।

१४९ जीवको सुख प्रिय है तो भी वह सुख क्यों नहीं पाता।
सुखके कारणोंका सेवन नहीं करता इसलिये।

१५० अपने ही मे आनन्दका समुद्र भरा है तो भी जीवको आनंद क्यों नहीं ?
क्योंकि वह अपनी सन्मुख नहीं देखता, बाहर ही बाहर देखता है इसलिये।

१५१ नरकमे उत्पन्न होते ही जीव कैसा दु:ख पाता है ?
मानों दु:खके समुद्रमे गिरा हो—ऐसा।

१५२ नरककी जमीनका स्पर्श कैसा है ?
हजारों बिच्छुओंके दश जैसा।

१५३ नरकमे दुर्गंध कैसी है?

जिससे अनेक कोश तकके मनुष्य मर जाये-ऐसी।

१५४ नरकमे बिच्छू आदि होते हैं क्या?

ना, वहां विकलेन्द्रिय जीव नहीं होते।

१५५ चारगतिके दु'खोंका वर्णन क्यों किया है?

मिथ्यात्वके कारण ऐसे दु ख होते हैं-यह जानकर उसका सेवन छोड, और सुखका कारण सम्यक्त्वादि है उसका सेवन कर।

१५६ अब तकका अनन्तकाल जीवने कहां गंवाया?

ससारकी चार गतिके दु ख भोगनेमे।

१५७ स्वर्ग और नरक क्या है?

जीवोंको पुण्य और पापके फल भोगनेका वह स्थान है।

१५८ नरकमे जीव कितना दुःख पाते हैं?

पूर्वमें जितने पापरूपी मूल्य भरा हो इतना।

१५९ तीव्र हिंसा. मास भक्षण आदि महापाप करनेवाले जीव कहा जाते हैं?

नरकमे।

१६० नरकमे जानेवाला जीव कितने काल तक दु ख भोगता है?

कमसे कम दस हजार वर्षसे लेकर असख्यवर्षो तक।

१६१ सिद्धपदके सुखमे जीव कितने काल तक रहता है?

संसारसे अनन्तगुणे काल तक,-सादि अनन्त, सदैव।

१६२ चारगतिका दु:ख किसको भोगना पड़ता है?
जो आत्माका ज्ञान न करे उसको।

१६३ नरककी अनन्त वेदनासे भी जीव मर क्यों नहीं गया?
जीवका जीवत्व या अस्तित्व कभी नष्ट नहीं होता। अरे!
नरककी वेदनाके बीचमे भी असंख्य जीवोंने अन्तरमे उतर
कर सम्यग्दर्शन प्राप्त किया है।

१६४ दु:खमय संसारमे कहीं चैन न पड़े तो क्या करना?
हे जीव! तुझे कहीं भी चैन न हो तो आत्मामे आ जा।

१६५ नरकका आयु किसको बन्धे?
मिथ्यादृष्टिको ही बन्धते हैं, सम्यग्दृष्टिको नहीं बन्धते।
वीतरागी देव-गुरु-धर्मकी निंदा करनेवाले और तीव्र पाप
करनेवाले जीव नरकमे जाते हैं।

१६६ कोई सम्यग्दृष्टि जीव भी नरकमे तो जाते हैं?
उसने पूर्व मिथ्यात्वदशामे नरक आयुका बन्ध किया था।

१६७ क्या नरकके जीवको कभी साता होती है?
हां, मध्यलोकमे तीर्थंकरका जन्म आदि प्रसंग होने पर नरकके
जीवोंको भी साता होती है और उस प्रसंगमे कोई कोई
जीव सम्यक्त्व भी पा लेते हैं।

१६८ क्या शीतसे भी आग लगती है?
हां, हिमपातकी तरह शांत-अकषाय भावसे कर्मोमे आग लग
जाती है।

१६९ किस भावसे कर्मोका नाश होता है ?
वीतरागभावसे।

१७० नारकीमे स्त्रीवेद या पुरुषवेद होता है क्या ?
ना, वहाके सब जीव नपुंसक होते हैं।

१७१ देवलोकमे कौनसा वेद होता है ?
वहां स्त्री या पुरुषवेद ही होते हैं, नपुसकवेद नहीं होते।

१७२ नरकमे खाने-पीनेका मिलता है क्या ?
ना, वहा कभी जलकी बूंद या अन्नका कण भी नहीं मिलता।

१७३ तो ऐसी नरकमे भी सम्यग्दर्शन हो सकता है क्या ?
हां भाई ! वहा भी आत्मा तो है न। अत सम्यग्दर्शन पाकरके दु खके समुद्रके बीचमे भी शान्तिका मधुर झरने प्राप्त कर सकते हैं।

१७४ जीवको दु:खके समुद्रसे बचानेवाला कौन है ?
एकमात्र वीतरागी धर्म और कोई नहीं।

१७५ नरकके दो भवके बीचमे अंतर कमसे कम कितना ?
अन्तर्मुहूर्त, नरकमेसे निकला हुआ कोई जीव मात्र अन्तर्मुहूर्तमें तीव्र पाप करने फिर नरकमे चला जाता है।

१७६ नरकमें जीव कितनी इन्द्रियवाले हैं ?
वे जीव पंचेन्द्रिय-संज्ञी हैं।

१७७ जिसका खंडखंड हो जाय ऐसा शरीर नारकीको क्यों मिला ?
उसने अखंड आत्माकी एकताको पापसे खंडखंड कर दी इसलिये।

१७८ जीवको कितना सुख ? कितना दुःख ?
जितनी स्वभावपरिणति उतना सुख जितना विभाव उतना दुःख।

१७९ क्या आहार-जलके विना आदमी जी सकता है ? हां।

१८० जीवको परवस्तुके विना चलता है क्या ?
हाँ, परवस्तुके विना ही जीव अपनी अस्तिसे जी रहा है।

१८१ नरकमें जीवको किसने दुःखी किया ?
किसी दूसरेने दुःखी नहीं किया, जीव अपने मोहसे ही दुःखी हुआ।

१८२ क्या नरकके जीवको भी शुभभाव हो सके ?
हां, इसके उपरान्त आत्मज्ञान भी हो सकता है।

१८३ नरकमेसे निकलकर जीव कहां जाता है ?
या तो मनुष्य होगा या तिर्यंचमे जायगा।

१८४ चारगतिमे सबसे कम भव जीवने किस गतिमे किये ?
मनुष्यगतिमे।

१८५ जीव बाहरी सयोग द्वारा अपनी बड़ाई क्यों मानता है ?
क्योंकि अपने अन्तरंग स्वभावकी महानताको वह नहीं जानता।

१८६ जीवको बडाई कैसे है ?
ज्ञानस्वभावके द्वारा जीवकी अधिकता एवं महानता है।

१८७ जीवको कौन शोभा नहीं देता ?
अज्ञान व दुःखका वेदन जीवको शोभा नहीं देता।

१८८ क्या इस समय भरतक्षेत्रमें आत्मज्ञानी जीव अवतरते हैं ?
ना, परन्तु अवतार होनेके बाद आत्मज्ञान पा सकते हैं।

१८९ मनुष्यभवकी सार्थकता कब ?
आत्माको पहचानके वीतरागविज्ञान प्रगट करे तब।

१९० क्या दुर्लभ मनुष्यपना अपूर्व है ?
ना, सम्यग्दर्शन प्रगट करना वह अपूर्व है।

१९१ मनुष्यको बुद्धि मिली-इसका उपयोग किसमें करना ?
आत्माके हितका विचार करनेमें।

१९२ जीव किसमें व्यर्थ काल गंवाता है ?
पार विनाकी परकी चिन्ता करनेमें व्यर्थ काल गंवाता है।

१९३ सुखरसकी गटागटी किसको है ? . सम्यग्दृष्टि जीवोंको।

१९४ क्या स्वर्गमें जाने पर मिथ्यादृष्टिको सुख होता है ?
ना, देवलोकमें भी वह दुःखी ही है।

१९५ स्वर्गमें भी जीव सुखी क्यों न हुआ ?
आत्मज्ञान न होनेसे।

१९६ चन्द्र-सूर्य दिखता है वह क्या है ?
वह ज्योतिषीदेवोंके विमान हैं उसमें देव रहते हैं।

१९७ कैसे जीव चन्द्रलोकमें उत्पन्न होते हैं ?
वहां अज्ञानी उपजते हैं, ज्ञानी नहीं।

१९८ देवोंको दुःख किसका ?
विषयोंकी अभिलाषाका।

१९९ स्वर्गमे कोई जीव सुखी हो सकता है क्या ?
हाँ, वहा जो देव सम्यग्दृष्टि हैं वे सुखी हैं।

२०० सन्तोंका यह उपदेश जानकर क्या करना ?
मिथ्यात्वादिका सेवन शीघ्र ही छोड़ना और सम्यक्त्वादिको परमसुखका कारण जानकर उसकी आराधनामे आत्माको जोडना।

२०१ ऐसा करनेसे कौनसा मंगल फल आयेगा ?
वीतरागविज्ञान प्रगट हो करके मोक्ष होगा।

तीनभुवनमें सार वीतरागविज्ञानता।
शिवस्वरूप शिवकार नमू त्रियोग सम्हारिके॥